अंक नौ

सं० २०४०

वार्षिक सहयोग
बीस रुपए

इस अंक का मूल्य
दस रुपए

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन

आल्हखंड

महाकवि जगनिक की उस लेखनी को
जिसने समूचे लोक की आत्मा में
आस्था का पांचजन्य फूँका

मामुलिया

वर्ष ३ अंक ६

आल्हखण्ड शोधांक

शोध खण्ड

वर्णना खण्ड

काव्य खण्ड

नवीन काव्य

स्थायी स्तम्भ

लोक की आस्था के
विजय पर्व
कजली महोत्सव
के
आठवें शताब्दी वर्ष पर
अकादमी परिवार
आप सबका अभिनन्दन करता है

मामुलिया

सम्पादक

डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

सहायक सम्पादक

डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

सम्पादन सहयोग

डा० बलभद्र तिवारी, डा० कृष्णकुमार हूंका, डा० हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा कौशिक, सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी

सम्पर्क

सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१।

व्यवस्थापकीय : बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१।

उदार पाठकों से

- इस अंक से आपका वार्षिक शुल्क समाप्त है।
- कृपया अगले वर्ष का शुल्क २० रु० धनादेश या स्टेट बैंक के ड्राफ्ट से शीघ्र भेजें ताकि आपकी प्रति सुरक्षित हो सके।
- अगले अंक से डाक-व्यय बढ़ने एवं महंगाई की वजह से पत्रिका का वार्षिक शुल्क २० रु० करना पड़ रहा है, आशा है कि पाठक उसे उसी तरह अपनायेंगे।
- वर्ष भर में मामुलिया पत्रिका में लगभग ५५०-६०० पृष्ठ की पाठ्य सामग्री रहती है। अंक-व्यय-भार भी बहुत अधिक हो गया है। इस कारण पाठक अन्यथा न लेंगे।
- रजिस्ट्री से मँगाने वाले पाठक कृपया १५ रु० डाक-व्यय अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

अपने मन मानिक के लान
सुगर चौधरी चाने

शेषांक क्यों ?

आल्हखंड के संबंध में हिन्दी में पहली बार इतनी सामग्री किसी भी पत्रिका के विशेषांक के लिए एकत्रित हुई है, जिससे जाहिर है कि आल्हखंड के प्रति जितना लोक सचेत है उतना ही शोधकर्ता लेखक वर्ग। लेख इतने ज्यादा हो गये कि विशेषांक में सब रखना मुश्किल हो गया। इस वजह से शेषांक आपके सामने हाजिर कर रहा हूँ। मेरी बिनती यही है कि जब इसका मूल्यांकन किया जाय तो निश्चित ही विशेषांक से जोड़कर परखा जाय, नहीं तो परख एकांगी होगी।

अमेरिका में आल्हखंड की चर्चा : एक विवादास्पद बिन्दु

भाई श्रीकृष्ण चौरसिया ने केलीफ़ोनिया विश्वविद्यालय बर्कले (अमेरिका) में सेवारत सुश्री कैरिन शोमर का 'दि ऐसोसिएशन फॉर एशियन स्टूडेन्टस् सैन-फ्रान्सिस' की १९८३ की वार्षिक सभा के लिए तैयार किया गया शोधलेख 'दि हीरोज़ आव दी आल्हा इपिक एण्ड देअर फेट' पढ़ने के लिए उदारता-पूर्वक दिया। लेखिका बधाई की पात्री हैं कि उन्होंने अमेरिका में आल्हा महा-काव्य की विशेष चर्चा की। साथ ही साथ निबंध प्रकाशित आल्हखंड और संदर्भ ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है लेकिन उन्होंने अपने लेख में जो निर्णय लिया है वह विवादों से परे नहीं हैं। एक तो उन्होंने अपने निष्कर्ष के प्रमुख प्रेरणा स्रोत भविष्य पुराण का उल्लेख तक ही नहीं किया। मैं समझता हूँ कि उनकी मान्यता तथा प्रकाशित आल्हखंडों में उसकी पोषक पंक्तियाँ भविष्य पुराण की ही ऋणी हैं। दूसरी बात यह कि लेखिका ने लोक महाकाव्य आल्ह-खंड को शास्त्रीय परम्परा के महाकाव्य पर आधारित मानकर मूल तथ्य में ही आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है जो किसी भी रूप में उचित नहीं कहा जा सकता है। लेखिका ने मुझे लिखे एक पत्र में दावा किया था कि उनके पास लोक मुख में जीवित आल्हखंड के अंश टेपांकित हैं। अच्छा होता कि वे अपने इस लेख के निर्णय की तुलना टेपांकित अंशों के आधार पर ली गई मान्यता से करतीं।

महोबा महोत्सव : आल्हाखण्ड पर गोष्ठी

जगनिक शोध संस्थान महोबा की तरफ से इस दौरान एक ऐसा सफल
आयोजन किया गया कि उसकी चर्चा न करने से यह अंक अपूर्ण सा लगेगा।
यह निश्चित महत्वपूर्ण है कि प्रसिद्ध कवि आलोचक और नाटककार डा०
रामकुमार वर्मा ने मुख्य आतिथ्य की औपचारिकता की रूढ़ि से हटकर एक
ऐसा व्यस्त कार्यक्रम बना लिया कि सारे आयोजन में नवीन प्राण आ गये।
संस्थान की पहली गोष्ठी महोबा में विस्मृत इतिहास के अंधयारे पक्षों पर
थी। खास बात सिर्फ यह उल्लेख्य है कि उस दिन संस्थान और विद्वानों ने
यह संकल्प किया कि महोबा के एतिहासिक अध्ययन के लिए एक संग्रहालय
की स्थापना की जाय। दूसरी गोष्ठी में महाकवि जगनिक और लोक महा-
काव्य आल्हखंड के विविध पक्षों पर विद्वानों द्वारा अनेक निर्णय लिए गये जो
कि उल्लेखनीय तो हैं ही चर्चा करने योग्य भी हैं। एक विशिष्ट उपलब्धि
यह है कि डा० रामकुमार वर्मा जैसे विद्वान समीक्षक ने इस सत्य को खुले
आम स्वीकारा कि आल्हखण्ड हिन्दी का पहला महाकाव्य है। दूसरे, विदोखर
के लोकप्रिय अल्हैत जयसिंह से आल्हा गायकी पर एक साक्षात्कारनुमा चर्चा
की गई और वर्मा जी ने ऐसे साक्षात्कारों की परम्परा को महत्वपूर्ण माना।
आयोजन के अंत में वर्मा जी की यह उद्घोषणा कि वे आल्हा पर एक नाटक
लिखेंगे, स्वागत योग्य थी। साथ ही संग्रहालय के लिए वर्मा जी द्वारा एक सौ
एक रुपये के प्रतीकात्मक दान की घोषणा प्रेरणास्पद थी।

—सम्पादक

परख-परखाव

● आदर्श पत्रिका

मामुलिया एक आदर्श जनपदीय (बुन्देलखंड) पत्रिका है। वह ज्ञानवर्द्धका, प्रेरणाप्रद तथा सुपाठ्य है।

—सम्पादकाचार्य बनारसीदास चतुर्वेदी, फरोजाबाद।

● एक टिप्पणी

सुसंग्रहीत, खंगारों की ज्ञातव्य जानकारी पढ़ने को मिली। डा० काशी प्रसाद जी त्रिपाठी का शोधपूर्ण लेख भी बहुतों को प्रेरणा देगा। 'अनोखी बाजी' का शब्द चयन और प्रयोग भी सराहनीय है। समय मिले तो लिखें—खंगारन, बसोरन, चमारन प्रयोग बहुप्रचलित है अथवा—खंगारनन बसोरनन चमारनन Double plural बाम्हनन, ठाकुरन, बनियन में तो नहीं है न। कभी इस plurality पर लिखा जायगा।

—डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, कन्हैया लाल मुंश हिन्दी
विद्यापीठ, आगरा

● कलहनतरता या कलहान्तरिता ?

मामुलिया के अंक सात पृष्ठ १२ और १६ पर 'फाग महोत्सव' के सम्पादक डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने संस्कृत के शब्द-साहश्य पर गठित बुन्देली हिन्दी के शब्दों को प्रदर्शित करते हुए कलहान्तरिता संस्कृत शब्द के स्थान पर कलहनतरता कलह और कर्त्ता का समासयुक्त पद दिखलाया है। कोष्ठक में (कलह का बहुबचन कलहन तथा करत, जो कि तरता बनकर आया है) लिखा गया है। पृष्ठ १६ पर कलहकर्ता का लक्षण दिया है—"मन मना हारे अरे तू रूसी निजधाम, फिर पछतावै जागकें कलहनतरता बाम ॥६१॥" दशरूपक द्वितीय प्रकाश (धनञ्जय) की कारिका २३ की संस्कृत वृत्ति के अनुसार इसे कलहान्तरिता नायिका कहा जाना चाहिए।

—डा० वीरेन्द्रकुमार जैन, संस्कृत विभाग, महाराजा महाविद्यालय,
धतरपुर,

फाग-महोत्सव पर समीक्षात्मक टिप्पणी

'मामुलिया' के सातवें अंक में कवि शिवदयालु कृत 'फाग-महोत्सव' के

प्रकाशन के लिए सम्पादक (पत्रिका के भी और उक्त कृत के भी) बधाई के लिए पात्र हैं। प्राचीन साहित्य का प्रकाशन उतना ही आवश्यक है जितना नवीन सृजन। प्राचीन साहित्य के प्रकाशन के लिए इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह मूल रूप में ही जन सामान्य तक पहुँचे, भ्रष्ट और विकृत होकर नहीं। इस कृति के सम्पादन में अनेक त्रुटियाँ रह गयी हैं, जिनकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूँ। ऐसा लगता है कि उक्त कृति की आधार प्रति काफी भ्रष्ट है। वस्तुतः उस युग में प्रतिलिपि का कार्य एक व्यवसाय का रूप ले चुका था। दूसरे; अधिकांश लिपिकार बहुत कम पढ़े लिखे होते थे। काव्य परम्परा का ज्ञान भी इन्हें बहुत कम होता था। इस कृति का लिपिकर्ता भी अबुध जान पड़ता है। सम्पादक ने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि कुछ त्रुटियों को तो कवि की उपलब्धि या नई सूझ तक मान लिया गया यद्यपि सम्पादक ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है कि "उसे यथावत् लिपिबद्ध करके प्रस्तुत किया जा रहा है।", तथापि वे दोष मुक्त नहीं हो सकते। सम्पादक का कार्य ही होता है किसी कृति को अधिक से अधिक शुद्ध रूप प्रदान करना।

सर्वप्रथम छन्द के शास्त्रीय रूप को ले लें, जिसे सम्पादक ने बिल्कुल अनदेखा कर दिया है। समीक्ष्य कृति में नायिकाओं के लक्षण-निरूपण के लिए 'दोहा' छन्द प्रयुक्त हुआ है। दोहा मात्रिक छन्द है, इसमें चार चरण होते हैं। प्रथम एवं तृतीय चरण में १३,१३ तथा द्वितीय एवं चतुर्थचरण में ११,११ मात्राएँ होती हैं। विवेच्य रचना के कुछ दोहों में इस नियम का निर्वाह न होने से लय में बाधा उत्पन्न होती है। कुछ का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

दोहा सं० ४ के अंतिम चरण में १० मात्राएँ हैं, जब कि नियमानुसार ११ मात्राएँ होनी चाहिए, इसकी पूर्ति 'उदोत' के 'द' में जोर देने पर हो जाती है। वस्तुतः पाठ 'उद्दोत' या 'उद्योत' होना चाहिए। ८ संख्यक दोहे के प्रथम चरण में १३ के स्थान पर १२ मात्राएँ हैं, इसकी पूर्ति 'सुकिया' के 'सुकीया' पाठ से हो जाती है। दोहा सं० २० के द्वितीय चरण में दो मात्राएँ कम है, जान पड़ता है कोई शब्द छूट गया है। २६वें दोहे का प्रथम चरण पढ़ने में खटकता है तथा दूसरे चरण में दो मात्राएँ कम हैं। ४३ संख्यक दोहे के दूसरे चरण में भी दो मात्राएँ कम हैं और ४५ संख्यक दोहे के दूसरे चरण में १२ मात्राएं हैं। यानी एक मात्रा अधिक है, 'सराहना' को 'सरहना' पढ़ने से छन्द ठीक हो जाता है। 'सोई' शब्द का व्यवहार अनेक स्थलों पर अशुद्ध है, उदाहरणार्थ—दोहा सं० ५,११,१४,३२ आदि। यह दीर्घ 'ई' के स्थान

पर ह्रस्व 'इ' होना चाहिए।

ये तो हुई छन्द सम्बन्धी त्रुटियाँ। अब पाठ-सम्बन्धी अशुद्धियाँ देखिए। कुछ स्थलों पर ऐसे शब्द प्रयुक्त हैं जो या तो निरर्थक हैं या फिर प्रसंगानुकूल नहीं है, यथा—पाँचवें दोहे में प्रयुक्त 'सीजी' शब्द के स्थान पर 'तीजी' पाठ होना चाहिए। दोहा सं० ३० में 'बचपन' के स्थान पर 'बचनन' पाठ होगा। कवि का अभीष्ट विदग्धा नायिका के भेदों—वचन विदग्धा और क्रिया विदग्धा का स्पष्टीकरण करना है। इसी प्रकार ४३ संख्यक दोहे में 'सुख' के स्थान पर 'सुरत' पाठ होना चाहिए। जब स्पष्टतः दोहे का शीर्षक 'अन्य सुरतदुखिता का लक्षण' उल्लिखित है, तब 'अन्य सुख दुखिता' का दुख और भी असह्य हो जाता है। दोहा सं०५१में 'नायक' के स्थान पर 'नायिका' पाठ होना चाहिए। ऐसा करने से छन्द का शास्त्रीय ढाँचा गड़बड़ होता दिखाई देगा। वस्तुतः 'नायिका' की एक मात्रा की पूर्ति उसके पूर्व-शब्द 'सोई' से होगी। 'सोइ' पाठ हो जाने से छन्द की गति भी अनुकूल हो जायेगी।

कुछ नायिकाओं के नामों के सम्बन्ध में भी सम्पादक ने भ्रम उत्पन्न कर दिया है। वस्तुतः 'नवोढ़ा' का उच्चारण 'नौढ़ा' तो मान्य हो सकता है क्योंकि इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु 'कलहनतरता' और 'उक्ता' के सम्बन्ध में उनकी मान्यता ठीक नहीं है। लिपिकार की असावधानी और अज्ञानता के कारण कुछ का कुछ हो गया लगता है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में 'कलहांतरिता' नायिका है। इसी के लिए इस कृति में 'कलहनतरता' शब्द का प्रयोग हुआ है। सम्पादक महोदय ने इसका भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए इसे 'कलह' और 'कर्ता' से जोड़ा है और इसे कवि की एक उपलब्धि माना है, जबकि ऐसा कुछ है नहीं। संस्कृत आचार्यों के लक्षण से कवि द्वारा निरूपित लक्षण मिलता-जुलता है। दूसरे, स्वयं समीक्ष्य कृति में ही यह शब्द अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग रूप लिए हुए है। एक स्थान पर 'कलहन करता' पाठ मिलता है, दूसरे स्थान पर 'कलहनतरता' जबकि लक्षण सम्बन्धी शीर्षक में 'कलहकर्ता' मिलता है। इस शब्द के सम्बन्ध में सम्पादक महोदय भूमिका में लिखते हैं—"कलहनतरता, कलह और कर्ता का समासयुक्त रूप (कलह का बहुवचन कलहन तथा करत जो कि तरता बनकर आया है।" इससे ऐसा लगता है कि सम्पादक ऐसी नायिका का विचार कर रहे हैं जो कलह करती है, जबकि कवि निरूपित लक्षण में कलह के साथ ही नायक के चले जाने के पश्चात् अपने किए पर पछताने की भी बात कही गयी है, जो इस नाम से स्पष्ट नहीं होती। दूसरे, कलह का कोई बहुवचन रूप भी होगा और यदि होगा भी तो वह 'कलहन' होगा, यह भी सुविचारित नहीं

सकता। पता नहीं व्याकरण के किस नियम के आधार पर 'कलह' और 'कर्ता' या 'कलहन' और 'करता' का समासयुक्त रूप कलहनतरता बनेगा। फिर, कर्ता शब्द का प्रयोग भी अशुद्ध होगा, क्योंकि नायिका के लिए प्रयुक्त होने पर इसका भी लिंग परिवर्तन होना चाहिए था। इसलिए यही मानना उचित प्रतीत होता है कि मूल शब्द वस्तुतः 'कलहांतरिता' ही है, जिसका हिन्दी उच्चारण कलहनतरता या कलहंतरिता होगा। यह प्रयोग अन्य हिन्दी-आचार्यों में भी मिलता है, कलहनकरता या कलहकर्ता सर्वथा अशुद्ध हैं।

इसी प्रकार एक नायिका 'उक्ता' नाम से उल्लिखित है, जिसके सम्बन्ध में सम्पादक का विचार है कि—"उक्ता (ऊबने वाली स्त्री, संभवतः संस्कृत उक्ता, जिसे कह दिया गया है, वचन दे दिया गया है और अब वह प्रतीक्षारत अतः ऊब रही। मानक हिन्दी कोश में इस शब्द को उकतान=ऊबना, अरबी शब्द से जोड़ा गया है।)" इसे भी बौद्धिक विलास के अतिरिक्त और कुछ नहीं माना जा सकता। यह शब्द वस्तुतः 'उक्ता' न होकर 'उत्का' है। संस्कृत के कुछ आचार्यों ने 'उत्का' के लिए उत्कंठिता या 'विरहोत्कंठिता' शब्दों का प्रयोग किया है। लक्षण प्रायः सभी के समान हैं। रसमंजरीकार भानुदत्त ने 'उत्का' शब्द का व्यवहार किया है। उत्कंठा तथा ऊबना दो अलग-अलग भाव हैं। असावधानी के कारण या प्रमादवश 'उत्का' का 'उक्ता' हो जाना असंभव नहीं है।

—डा० देवेन्द्र २८०, बिड़ला छात्रावास,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी,

आल्हखण्ड के पात्र

● जाहिर सिंह

हिन्दी के आदि कवि जगनिक द्वारा प्रणीत 'आल्हखण्ड' की हस्तलिखित कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुई है, तथापि इस वीरकाव्य का गायन कुछ परिवर्तनों एवं परिवर्द्धनों के साथ परम्परा से होता चला आया है। परम्परागत आल्हा गायकों को फरुखाबाद के तत्कालीन कलक्टर श्री सी० ई० इलियट ने एकत्र-कर 'आल्हखण्ड' को लिपिबद्ध कराया, जिसे मुन्शी रामस्वरूप ने छपवाने की अनुमति प्राप्त कर पहली बार सम्वत् १६२१ तदनुसार सन् १८६४ ई० में प्रकाशित किया। सम्प्रति यही 'आल्हखण्ड'—बावनगढ़ की लड़ाइयों के रूप में—उत्तर भारत में वर्ष पर्यंत, विशेषकर सावन-भादों के महीनों में गया जाता है। इस वीर काव्य में स्त्री-पुरुष, घोड़ी-घोड़े, हथिनी-हाथी, तोते तथा देवी-देव आदि कुल मिलाकर १८४ पात्रों के कार्यकलापों का वर्णन किया गया है।

कभी-कभी इतिहास के विद्यार्थी यह प्रश्न कर देते हैं; क्या 'आल्हखण्ड', उसके पात्र तथा उनके कार्यकलाप वास्तविक हैं? कई विद्वानों ने मुझसे यह शंका व्यक्त की कि 'आल्हखण्ड' में वर्णित स्थल तथा चंदेल राजाओं द्वारा बनवाये गये भवनों, किलों आदि के अवशेष हैं भी अथवा नहीं? लोगों के मन में यह धारणा भी गहरी हो गई है कि 'आल्हखण्ड' अतिशयोक्तियों का भण्डार है।

यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि 'आल्हखण्ड' वीर गाथा-काल की परम्परा के अन्तर्गत प्रणीत होते हुए भी अपने में कुछ भिन्न है—वह लोक भाषा में लिखा गया है। वास्तव में तत्कालीन राजाओं के आश्रय में रहने वाले चारण या भाट कवि अपने आश्रय-दाता की कीर्ति का बखान किया करते थे। राजा सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता था; अतः अधिकांश वीरगाथायें राजाओं की ही प्रशंसा से भरी-पूरी हैं। 'आल्हखण्ड' के प्रणेता कवि जगनिक यद्यपि महोबा के चन्देल राजा परिमाल (परिमर्दिदेव) के आश्रम में थे, तथापि, उन्होंने 'आल्हखण्ड' के नायक के रूप में आल्हा के चरित्र को उदात्त किया है। आल्हा, परिमाल की सेना का सेनानायक था और अपने भाइयों ऊदल, मलखान, सुलखान आदि सबमें ज्येष्ठ था। विशेषता यह है कि जगनिक ने अपने आश्रयदाता परिमाल की अपेक्षा आल्हा, ऊदल,

मलखान, ढेवा, इन्दल तथा ताल्हा सैय्यद आदि के चरित्रों को अधिक उदात्तता प्रदान की है।

कथानक के संयोजन में, कथाकार ने, अलंकृत भाषा-शैली का प्रयोग किया है, जो काव्य सौष्ठव का आधार होती है और जिसमें अतिशयोक्तियों का समाहित होना स्वाभाविक है। किन्तु अतिशयोक्ति मात्र कार्य-कलापों, शृंगारिक प्रसंगों आदि में प्रयुक्त की जा सकती है। पर जहाँ तक स्थलों का प्रश्न है, यथा महोबा, कालिंजर, खजुराहो, सिरसा, उरई, कन्नौज, दिल्ली, माड़ो, रिजगिरि, दसपुरवा, गांजर के राज्य—बनारस, पट्टी (प्रतापगढ़) आदि-बौरीगढ़, जूनागढ़, चिल्लाघाट प्रभृति स्थान; इन स्थानों के पुरावशेष, यथा महोबा स्थित कीरत सागर, मदनसागर, विजयसागर (बीजानगर), कल्याण सागर, रहिलिया तालाब; मनियादेव, बड़ी चन्द्रिका, छोटी चन्द्रिका, रहिलिया का सूर्यमन्दिर; कालिंजर का किला व शिवमन्दिर, खजुराहो के देव मन्दिर आज भी निर्विवाद हैं। लगभग एक हजार वर्ष पूर्व निर्मित किले व भवन यद्यपि काफी ध्वस्त हो गये हैं किन्तु उनके अवशेष किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं जिन्हें स्थलों पर जाकर देखा जा सकता है। नदियों में नर्मदा, यमुना, बेतवा, चम्बल संसार के मानचित्र में मौजूद हैं। पर्वतों में गोखागिरि (गुखार पहाड़) काला पठवा आदि अपने-अपने स्थान पर हैं।

उत्तर भारत के तत्कालीन तीन प्रमुख राज्य, कन्नौज, दिल्ली तथा महोबा के राजाओं—जयचन्द राठोर, पृथ्वीराज चौहान तथा परिमाल चंदेल के नाम इतिहास में वर्णित हैं। पृथ्वीराज चौहान के राजकवि चन्दवरदायी ने जहाँ अपने आश्रयदाता शब्द वेध चौहान की वीरता का यशगान किया है वहीं उसने महोबा के बनाफर वीरों—आल्हा, ऊदल, मलखान, इन्दल आदि के साथ-साथ ब्रह्मा, ढेवा, सुलखान, मीरा ताल्हन, रूपनाबारी तथा अन्य सामान्य चरित्रों की वीरता की प्रशंसा 'पृथ्वीराज रायसो' के 'महोबा-खण्ड' में मुक्त हृदय से की है। भविष्य पुराण, प्रबन्ध चिन्तामणि आदि ग्रंथों में भी इन वीरों की गाथा मिलती है। 'बलभद्र विलास' में आल्हा द्वारा चौंड़ा ब्राह्मण के वध का उल्लेख किया गया है। यदि यह मान लिया जाय कि उपर्युक्त सभी प्रमाण काल्पनिक है तब ही यह माना जा सकता है कि 'आल्ह खण्ड' भी काल्पनिक है। किन्तु ऐसा मान लेना कल्पनातीत होगा।

पौराणिक मतानुसार आल्हा महाभारत के चरितनायक धर्मराज युधिष्ठिर का, ऊदल भीम का, ब्रह्मा अर्जुन का, इन्दल अभिमन्यु का, ढेवा नकुल का, पृथ्वीराज दुर्योधन का, धांधू दुश्शासन का, ताहर कर्ण का और चौंड़ा द्रोणाचार्य का अवतार माने जाते है। पृथ्वीराज और रानी अगमा की पुत्री बेला द्रोपदी

का अवतार कही जाती है। राजशेखर सूरि (जैन) कृत 'प्रबन्धकोष' तथा जय विजय मुनि (जैन) कृत 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में भी आल्हा, ऊदल का उल्लेख किया गया है। ऐसे साक्ष्यों की उपस्थिति से स्पष्ट है कि 'आल्हखण्ड' और उसके प्रमुख पात्रों को काल्पनिक मानना सिरफिरेपन की बात होगी।

कुछ लोग बिना विचारे 'आल्हखण्ड' के चरित नायकों पर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने दूसरे राजाओं की कन्याओं से विवाह करने के लिये ही युद्ध किये। यह आक्षेप निराधार है। यदि 'आल्ह खण्ड' को ध्यान से पढ़ा जाय तो उसमें मिलेगा कि आल्हा-ऊदल और उनके सहयोगी उच्च चरित्रवान् व्यक्ति थे। उन्होंने चोरी-छिपे किसी सुन्दरी के साथ विवाह करने के लिये क्षत्रीगत वीरता की परम्परा को कहीं भी भंग नहीं किया, अपितु परम्परागत मर्यादानुसार उसे प्राप्त करने के लिये यातनायें भोगीं, कष्ट सहे, खंदकों में डाले गये, भूखे रहे, फिर भी वांछित राजकुमारी द्वारा सहायता अर्पित किये जाने पर भी अनुचित रीति से ऐसी सहायता का लाभ नहीं उठाया; वरन् अपने शौर्य का प्रदर्शन और क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुये उसके साथ विधिवत विवाह संस्कार सम्पन्न किया। विवाह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। आल्हा, ऊदल, मलखान आदि के एक ही एक विवाह का वर्णन 'आल्हखण्ड' में मिलता है जबकि तत्कालीन राजा एकाधिक विवाह करते थे, क्योंकि उस युग में एक से अधिक विवाह करना वर्जित नहीं था।

स्वयंवर प्रथा के काल मे विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष की ओर से वरपक्ष की वीरता की परीक्षा लेने की प्रथा तत्कालीन राजाओं मे प्रचलित थी। राम की शक्ति की परीक्षा धनुष भंग द्वारा ली गई थी। द्रोपदी स्वयंवर के अवसर पर अर्जुन की धनुर्विद्या की परीक्षा ली गई थी। तत्कालीन चौहान राजा दिल्लीपति पृथ्वीराज को संयोगिता स्वयंवर के अवसर पर उसे प्राप्त करने के लिए कन्नौज से दिल्ली तक युद्ध करना पड़ा था। राजा रत्नसेन ने अपनी रानी नागमती को चित्तौड़ में वियोगिनी के रूप में छोड़कर पद्मावती को प्राप्त करने सिंहल द्वीप की यात्रा की थी और यातनायें सहीं थीं। इस कथानक के आधार पर जायसी ने 'पद्मावत' जैसा महाकाव्य लिखा है। किन्तु यदि आल्हा, ऊदल, मलखान, ब्रह्मा, इन्दल आदि के विवाह तत्कालीन युग की परम्परानुसार युद्ध करके सम्पन्न किये गये तो इतिहास का अतिक्रमण नहीं कहा जा सकता। विचारणीय विषय यह है कि इस प्रकार स्थापित किये गये सम्बन्ध आगे चल कर मधुर और स्थायी रहे।

बासुदेव-पुत्र माहिल परिहार की बहिनों के विवाह—मल्हना का परिमाल, अगमा का पृथ्वीराज और तिलका का रतीभान के साथ—हुआ था। मल्हना की प्रेरणा से महोबा से परिहारों का आधिपत्य समाप्त कर परिमाल

द्वारा उन्हें उरई तथा जगनेरी में सीमित कर दिया गया था। इस व्यक्तिगत द्वेष के कारण महोबा का विनाश करने के लिए माहिल आजीवन षड्यंत्र रचता रहा। उसने आल्ह-ऊदल आदि बनाफरों को क्षत्रिय कुल का ओछा बताकर उन्हें अन्य क्षत्रियों की दृष्टि में गिराया। परिणामतः आज भी छत्तीसी वाले क्षत्री बनाफरों को अपने से ओछा मानते हैं। परिमाल की दृष्टि में उसने आल्हा-ऊदल को सदैव गिराने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर पृथ्वीराज को महोबा पर आक्रमण करने और यहाँ की अतुल सम्पत्ति-पारस पथरी सहित-लूट कर ले जाने को उकसाया। माहिल परिहार—जिसे यदि 'आल्हखंड' का खल-नायक कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी—चुगलखोर था और सदैव महोबा का अहितचिन्तक रहा। उसी के कारण कन्नौज के राठौर, दिल्ली के चौहान और महोबा के चन्देल वंशों का पतन हुआ।

परिमाल आरम्भ में यद्यपि एक वीर योद्धा था किन्तु मल्हना के प्रेम-पाश में फंसकर वह मात्र विलासी और शक्तिहीन हो गया था। इन परिस्थितियों में जगनिक ने यदि सत्य घटनायें अपने वीर काव्य में प्रस्तुत की हैं, तो यह आश्रित कवि की निर्भीकता, सत्यप्रियता और मानव-मानदण्डों के प्रति उदारता कही जानी चाहिए, न कि कोरी कल्पना।

आल्हा और ऊदल ने जीवन पर्यन्त देश-हित तथा स्वामिभक्ति धर्म का पालन किया। महोबा से परिमाल द्वारा 'भर भादों' में निष्कासित किये जाने पर भी पृथ्वीराज के आक्रमण के कारण महोबा पर जब जब संकट के बादल छाये, तब तब इन वीरों ने अपने मानापमान को ताक पर रखकर महोबा और अपने स्वामी परिमाल की प्रतिष्ठा की रक्षा की। और अन्त में पृथ्वीराज के समस्त योद्धाओं का बध किया। पृथ्वीराज ने अपनी पराजय स्वीकार की और अन्त में मुहम्मद गोरी के द्वारा मार दिया गया। इन युद्धों में कन्नौज ने महोबा का साथ दिया और वहाँ के भी सभी योद्धा मारे गये। आल्हा और उसके पुत्र इन्दल ने सन्यास धारण कर लिया।

इतिहासकार सदा से इतिहास में राजाओं की ही यश गाथा का उल्लेख करते आये हैं। आल्हा मात्र एक सेनाध्यक्ष था। अतः पृथ्वीराज, जयचन्द, परिमाल अथवा अन्य राजाओं की भाँति इतिहास में उसको उचित स्थान न मिलना स्वाभाविक ही है। दैवयोग से जगनिक कृत आल्हखण्ड लिखित रूप में सम्प्रति उपलब्ध नहीं हो सका, अतः इस कारण भी इतिहासकार आल्ह खण्ड की प्रामाणिकता को शंकास्पद दृष्टि से देखते हैं। राजपूत काल के पश्चात् भारत को यवनों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और तदोपरान्त वह अंग्रेजों के अधीन हो गया। फलतः इस युग का विशेष कर बुन्देलखण्ड का वास्तविक इतिहास प्रकाश में नहीं लाया गया। केवल उन्हीं घटनाओं का जो

तत्कालीन राजाओं, बादशाहों तथा अंग्रेज गवर्नरों के अनुकूल थीं, इतिहासकारों ने उल्लेख किया है, भले ही आल्हखण्ड के चरितनायक प्रजा वत्सल थे और सबको समान दृष्टि से देखते थे तथा सभी की सुख समृद्धि का ध्यान रखते थे। राज्य की प्रजा सुखी थी तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थी। राज्य में धार्मिक उदारता थी।

भारतीय ही नहीं अपितु अंग्रेज विद्वानों का भी मत है कि 'आल्हखण्ड' के रचयिता जगनिक ने इस वीरगाथा की रचना उत्तर भारतीय सामान्य तथा निरक्षर जनता के लिये की थी न कि सुशिक्षित विद्वन्मण्डली के लिये। जगनिक की यह कृति भले ही उच्चकोटि के इतिहास के मर्मज्ञ विद्वानों की मानस परिधि के बाहर हो किन्तु वह सामान्य जन के जीवन में इतनी अधिक व्याप्त है कि लोग आल्हागायन सुनकर आनंद और उत्साह से ही ओत-प्रोत नहीं होते अपितु वे आल्हखण्ड के उद्धरणों को उदाहरण के रूप में भी अधिकांशतः प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में किसी कृति की लोकप्रियता का माप दण्ड उसके प्रति विद्वानों के श्रीमुख से निकली प्रशस्ति ही नहीं वरन् लोकमानस में व्याप्त उसका स्थान है। आज हम प्रकाण्ड पण्डित केशवदास को भूल सकते हैं; अंग्रेजी भाषा के विद्यार्थी डॉन और डिकिन्स को भुला सकते हैं, किन्तु जगनिक का उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र की जनता के हृदय से अलग होना कल्पना के परे है।

आइये! अब आप 'आल्हखण्ड' के पात्रों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कीजिये। पूर्व इसके कि पात्र-सूची एवं पात्र परिचय आपके समक्ष प्रस्तुत किया जाय, यहाँ यह नितान्त समीचीन होगा कि उन विद्वानों तथा उन ग्रन्थों का साभार उल्लेख कर दिया जाय जिनके आधार के बिना सम्भवतः पात्र-परिचय भली-भाँति प्रस्तुत न किया जा सकता। प्रमुखतः 'ले ऑफ आल्हा' (Lay of Alha), जिसकी पूर्व में विलियम वाटर फील्ड ने पद्यानुवाद के रूप में रचना की और जिसे पश्चात् में सर जार्ज ग्रियर्सन ने पूर्ण किया, से पात्र-योजना का संयोजन किया गया है। 'ले ऑफ आल्हा' में अंग्रेजी वर्णमाला के आधार पर पात्र योजना प्रस्तुत की गई है, जिसका संयोजन यहाँ पर हिन्दी (देवनागरी) वर्णमाला के अनुसार किया गया है। जिन नामों को अंग्रेज विद्वानों ने अंग्रेजी भाषा की छाप देकर प्रस्तुत किया था, उनका हिन्दीकरण प्रचलित नामों के आधार पर किया गया है। प्रमुख पात्रों की विशेषताओं का प्रस्तुतीकरण खरेला निवासी स्वर्गीय डा० रणधीर सिंह के अनुज श्री श्रवण सिंह से प्राप्त 'पृथ्वीराज रायसो' के 'महोबा खण्ड' की हस्तलिखित प्रति, प्रचलित 'आल्हखण्ड' तथा 'ले ऑफ आल्हा' के आधार पर किया गया है

इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि लोकमत, काव्यमत और इतिहास की सीमाओं का अतिक्रमण न हो। पात्र परिचय में जहाँ कहीं भी खण्ड, काण्ड अथवा सर्ग कोष्टक में लिखे गए हैं वह 'ले आफ आल्हा' से सन्दर्भित हैं और वृहद् 'आल्हखण्ड' से उनका मेल है। यदि इस प्रस्तुतीकरण के माध्यम से मैं, विशेषकर उन विद्वानों, जिनके मन में 'आल्हखण्ड' की प्रामाणिकता के विषय में अनेक शंकायें विद्यमान हैं तथा आने वाली पीढ़ी के पाठकों के विचारों में तनिक भी शुद्धता ला सका और 'आल्हखण्ड' के प्रति उनमें कुछ आस्था जागृत कर सका तो मैं अपने प्रयास को किसी सीमा तक सफल मानूँगा।

आल्हखण्ड के पात्रों की सूची और उनका संक्षिप्त परिचय

१. अगमा- रानी अगमा दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की पत्नी थी। यह उरई के परिहार राजा माहिल की बहिन थी। अगमा रानी बड़ी बुद्धिमती थी इसी कारण सभी रानियों में वही मुख्य पटरानी समझी जाती थी। उसी के गर्भ से द्रोपदी ने बेला नाम से जन्म धारण किया था (ऐसी मान्यता है)।

२. अजैपाल-अजयपाल-अजयपाल राठौर जयचन्द तथा रतीभान का पिता था और कन्नौज का राजा था। वह अधिक दिनों तक कथा मंच में नहीं रह सका। यह विवरण प्रथम काण्ड में वर्णित है।

३. अभई- अभई परिहार उरई के राजा माहिल परिहार का पुत्र था। वह स्वामिभक्त था और षड़यन्त्र कारी भी। भुजरियों के युद्ध में कीरत सागर पर युद्ध करते हुये पृथ्वीराज चौहान के पुत्र ताहर ने अभई का बध किया था। माहिल के इस पुत्र का प्रकरण आल्ह-खंड के तृतीय एवं चतुर्दश काण्डों में वर्णित है।

४. अनूपी- अनूपी माड़ों के बघेल राजा जम्बे का पुत्र था और करिंघाराय का भाई था। अनूपी का बध, अपने पिता के बध का बदला लेने गये ऊदल ने माड़ों युद्ध में किया था। यह विवरण तृतीय काण्ड में आया है।

५. अभिनन्दन- अभिनन्दन बलखबुखारा राज्य का राजा था। उसकी महारानी का नाम चम्पा और पुत्री का नाम चित्ररेखा था। अभिनन्दन के सात पुत्र थे जिनमें से तीन के नाम इस प्रकार हैं १—हंसामल २-मुखखा तथा ३-मोहन। अभिनन्दन की पुत्री बिठूर मेले में आल्हा के पुत्र इन्दल पर मोहित हो गयी थी और उसे हराकर बलखबुखारा ले गयी थी। अन्त में इन्दल के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। यह विवरण नवम् खण्ड में मिलता है।

६. अलामत-अलामत मीरा ताल्हन के नौ पुत्रों में से एक था। यह बात चतुर्थ काण्ड में वर्णित है।

७. अली- अली मीरा ताल्हन के नौ पुत्रों में से एक था। यह बात चतुर्थ काण्ड में वर्णित है।

८. अली बहादुर- यह महोबा का एक गौरवशाली योद्धा था जिसका विवरण वीर काव्य के चतुर्थ खण्ड में दिया गया है।

९. अहमद-यह एक वृद्ध मुसलमान फकीर था जिसने गजमोतिन को सती होने से रोका था। उक्त विवरण १३वें काण्ड में वर्णित है।

१०. आदि भयंकर (हाथी) आदि भयंकर उस गजराज का नाम है जिस पर पृथ्वीराज आरूढ़ होते थे। उक्त विवरण १९वें खण्ड में वर्णित है।

११— आल्हा—आल्ह खण्ड के चरितनायक, दस्सराज बनाफर के पुत्र, महोबा नरेश परिमर्दिदेव (परिमाल) के सेनानायक, ऊदल के ज्येष्ठ भ्राता माँ भगवती के अनन्य भक्त, शौर्य और संयम के धनी, देवल देवी के बड़े पुत्र को आल्हा के नाम से अभिहित किया जाता है। आल्हा का जन्म सन् ११६० ई० में हुआ था। बाल्यकाय से ही वह प्रतापी एवं महान योद्धा था। आरम्भ में वह करिलिया नामक उड़न बछेड़े पर सवार करता था। तदनन्तर आल्हा-पुत्र इन्दल उस पर सवारी करने लगा और आल्हा ने गजपश्चावद को सुशोभित किया। वास्तव में माड़ो के राजा जम्बे का राजकुमार करिंघाराय (करिया), आल्हा के पिता और चाचा बच्छराज को मार कर नौलखाहार, गजपश्चावद, घोड़ा पपीहा आदि लूट के माल के साथ ले गया था। सन् ११७५ के आस-पास आल्हा, ऊदल ने अपने बाप का बदला करिया से लिया और नौलखा हार, गजपश्चावद, घोड़ा पपीहा आदि माड़ों से छीन लाये। आल्हा का विवाह नैनागढ़ के राजा नैपाली की कन्या सुनवाँ (सुलक्षण), जो विलक्षण जादूगरनी भी थी, के साथ हुआ था। आल्हा ने बावनगढ़ के युद्धों में विजय प्राप्त की, कहीं पराजय नहीं हुई। बेला के सती हो जाने के पश्चात् जब आल्हा की अधिकांश सेना युद्धस्थल में जूझ गई तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने पृथ्वीराज की सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। पृथ्वीराज के वीर सेनानायक चौंड़ा (चामुण्डराय) का बध कर दिया। उस समय महाकोप करके आल्हा ने पृथ्वीराज की सेना का संहार करने के लिए भगवती की दी हुई खड्ग म्यान से निकाली, उस खड्ग के उठाने से जहाँ तक उसकी आभा पड़ी वहाँ तक के सब वीर सिरहीन हो गये। केवल पृथ्वीराज

और कविचन्द, जो वृक्ष ओट में थे बच गये। उसी समय आल्हा के गुरु गोरखनाथ जी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने आल्हा का हाथ पकड़ लिया और कहा, "ऐसा मत करो, खड्ग को म्यान में बन्द करो।" गोरखनाथ जी की आज्ञा से आल्हा ने खड्ग को म्यान में बन्द कर लिया। गुरु गोरखनाथ आल्हा को अपने साथ लेकर पृथ्वीराज के निकट गये और उससे कहा कि वह आल्हा से जीत नहीं सकता; अतः युद्ध न करे अपनी पराजय स्वीकार कर वापस चला जाय। आल्हा की विजय हुई और पृथ्वीराज दिल्ली वापस चला गया। आल्हा और उसके पुत्र इन्दल को साथ लेकर गोरखनाथ तपस्या करने के लिये वन को चले गये, जहाँ पर आल्हा ने भगवती की बहुत सेवा की और तपस्या के बल पर अमरत्व का वरदान प्राप्त किया। तत्पश्चात् वह कजरी वन में विलुप्त हो गया। यह वर्णन बाइसवें तथा तेईसवें सर्ग में मिलता है। कहा जाता है कि आल्हा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के अवतार थे, जो बड़े प्रतापी और सत्यवान थे।

१२—**अंगद**—अंगद ग्वालियर का था और वह पृथ्वीराज का एक गौरवशाली योद्धा था। इसका विवरण षष्ठम, त्रयोदश एवं षोड़ष सर्गों में दिया गया है। अंगद के विषय में एक विसंगति है। तेरहवें सर्ग में यह वर्णन है कि उसका बध मलखान ने किया जबकि २२वें सर्ग में उसका बध चन्दन-खम्भों के युद्ध में परसू के द्वारा किया गया वर्णित है।

१३—**इन्दल**—सुनवाँ व आल्हा का पुत्र था। हंसामन (करिलिया) घोड़ा पर सवारी करता था। (पंचम, सप्तम एवं नवम सर्ग)। बिठूर में गंगामेला के अवसर पर बलख बुखार के अभिनन्दन की पुत्री चित्ररेखा ने इन्दल पर मोहित होकर उसको तोता बनाकर हरण कर लिया और बलखबुखारा ले गई। तदनन्तर उसके साथ उसका विवाह हो गया। वह अभिमन्यु का अवतार माना गया है। बड़ा बहादुर था। उसने युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई। अन्त में अपने पिता आल्हा के साथ कजरीवन में विलुप्त हो गया।

१४—**इन्द्रसेन**—बौरीगढ़ के बीरसाह का पुत्र था। सुरखा घोड़े पर सवारी करता था और परमाल की पुत्री चन्द्रावल के साथ उसका विवाह हुआ था (अष्टम सर्ग)।

१५—**इन्दा**—यह परमाल का नाई था। (तृतीय सर्ग)।

१६—**ऊदल (ऊदन) अथवा उदय सिंह**—दस्सराज की रानी देवकुंवरि (दैवे) के गर्भ से पिता की मृत्यु के बाद इस महायोद्धा का जन्म हुआ था।

ऐसा माना जाता है कि वह भीमसेन का अवतार था। विलियम वाटरफील्ड ने 'ऊदल' के स्थान पर 'ऊदन' पर अधिक बल दिया है। बिहार में ऊदन को ऊदल कहा जाता है। कहीं-कहीं पर रुद्रसिंह भी कहा गया है। देवल देवी ने अपने पति के शोक में इस पुत्र का होना शुभ नहीं समझा और अपनी बान्दी को सौंपकर उससे कहा कि इस पुत्र को ले जाकर कहीं फेंक दे। बान्दी ने रानी देवकुंवरि को बहुत समझाया किन्तु वह नहीं मानी। अतः उस बान्दी ने उस पुत्र को ले जाकर रानी मल्हना को सौंप दिया। ऐसा भी वृत्तान्त है कि मल्हनदे स्वयं ऊदल के जन्मोत्सव के अवसर पर नाची थी और भेंट के रूप में दैवै ने ऊदल को ही दे दिया था। मल्हना ने ऊदल और ब्रह्मा का एक समान पालन-पोषण किया—एक सिहनी नाम की महिषी का दूध ऊदल को पिलाया। इस आधार पर उसका नाम बघ ऊदल कहा गया। ऊदल के पिता को दस्सराज बाघा कहा जाता था, इस कारण भी ऊदल का नाम बघ ऊदल रखा जाना समाचीन प्रतीत होता है।

बारह वर्ष का होने पर ऊदल ने देवी जी को प्रसन्न किया और देवी ने प्रसन्न होकर उससे कहा 'तू संसार में प्रसिद्ध होगा, रण क्षेत्र में किसी से न डरेगा, और तेरी मृत्यु ब्राह्मण के हाथ से होगी। ऊदल की वीरता के सम्बन्ध में किसी मनीषी ने कहा है :—

"ऊदनस्य कृतं कर्म, क एवमानवेषु च।
रणे कुर्याद् द्वितीयोय. शूर सामान्त घातिन।"

अर्थात् शूर सामन्तों को मारने वाले ऊदन के समान मनुष्यों में कौन ऐसा दूसरा योद्धा है जो युद्ध में ऐसे कार्य कर सके? अर्थात् दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है।

आल्हा का छोटा भाई ऊदल बेंदुला या रसबेंदुल नामक उड़न बघेड़े पर सवारी करता था। शिकार के समय उरई में माहिल के पुत्र को ऊदल के द्वारा अपमानित किये जाने पर माहिल ने ऊदल पर व्यंग किया था, "यदि तुम बड़े बहादुर हो तो माड़ौंनरेश करिंघाराय से अपने बाप का बदला क्यों नहीं लेते?" फलतः बहुत छोटी आयु में ऊदल ने माड़ौं पर आक्रमण कर, अनूपी, रंगा और सूरज का बध किया। मलखान ने करिंघा और आल्हा ने बघेल राजा जम्बे को पराजित किया। उन्होंने नौलखाहार, गजपश्यावद, लाखापातुर तथा घोड़ा पपीहा, जिनको करिया लूट के माल के साथ

महोबा से ले गया था, वापस छीन लिये। यह विवरण तृतीय सर्ग में वर्णित है। आल्हा, मलखान और ब्रह्मा के विवाहों के अवसरों पर ऊदल ने घोर युद्ध किये और विजय भी प्राप्त की (पंचम, षष्ठम तथा सप्तम सर्ग)। नरवर गढ़ के राजा की पुत्री फुलवा के साथ ऊदल का विवाह हुआ था। वह लाखन के विवाह में सम्मिलित हुआ और उसने घोर युद्ध किया तथा विजय पाई। महोबा से निष्कासित किये जाने पर आल्हा-ऊदल कन्नौज के राजा जयचन्द ने इनकी वीरता से प्रभावित होकर इनको रिजगिरि की जागीर दे दी। गाँजर क्षेत्र के राजाओं ने कन्नौज के जयचन्द की अधीनता अस्वीकार कर दी थी और कर देना बन्द कर दिया था। ऊदल ने इन राजाओं पर चढ़ाई कर दी और बहुत लम्बे समय तक युद्ध कर उन्हें परास्त किया तथा उनसे बारह वर्ष का कर वसूल कर लिया और पुनः उन्हें कन्नौज की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार वह लाखन का भ्रातृवत मित्र बन गया। महोबा की प्रथम मुक्ति के अवसर पर उसने सेना का नेतृत्व किया और द्वितीय मुक्ति के समय भी उसने घोर युद्ध कर महोबा का संकट दूर किया। सुभिया बिड़नी द्वारा उसको तोता बनाया गया और हरण गया। मछला की सहायता से मुक्त हुआ। बेला को दिल्ली से ले आता है और पृथ्वीराज की चन्दन बगिया कटवा लेता है। पृथ्वीराज के दरबार में लगे चन्दन के खम्भे ले आता है और बेला की चिता में लगाता है। अन्त में चौंड़ा ब्राह्मण के द्वारा मारा जाता है। यह वीर सेनानी अपने सैनिकों के साथ भ्रातृवत व्यवहार करता है। आल्हखण्ड में कहा गया है :—

मुर्चन मुर्चन नचै बेंदुला, ऊदल कहै पुकार पुकार।
नौकर चाकर तुम नाही हो, तुम सब भइया लगो हमार।

यद्यपि आज ऊदल पार्थिव रूप में हमारे बीच नहीं है, किन्तु वह अपनी वीरता, शौर्य, पराक्रम, निर्भीकता और चारित्रिक दृढ़ता के कारण भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी स्मरणीय है। वह जन-जन के मन में विद्यमान है, गंगा-जमुना की भाँति अमर है।

१७—**कबुतरी—(घोड़ी)**—मलखान की उड़न बछेड़ी का नाम है। (चतुर्थ एवं सप्तदश सर्ग)

१८—**कमलापत**—पृथ्वीराज का एक योद्धा था जो जगनिक द्वारा मारा गया था।

१९ -**कमलापत**—असम में कामरू के कमला का राजा था। ऊदल के द्वारा बन्दी बनाया गया था (बारहवाँ सर्ग)।

२०—**करिया या करिंगा राय**—माड़ों के बघेल राजा जम्बे का पुत्र था। करिया ने महोबा पर चुपके से हमला करके दस्सराज और बच्छराज का बध किया और उनकी खोपड़ियाँ अपने किला द्वार के अन्दर टँगवा दी थीं। नौलखाहार, पंड़ा पपीहा, हाथी पचशावद तथा लाखापातुर के साथ साथ लूट का बहुत साधन महोबा से ले गया था। उसका बध मलखान ने किया था।

२१ -**करिलिया (घोड़ा,**—आल्हा के उड़न बछेड़े का नाम है। आल्हा और रुपना बारी ने इस पर सवारी की। (तृतीय व चतुर्थ सर्ग)।

२२- **कान्ह कुँअर**—पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में दिल्ली का स्थानापन्न हुआ। (प्रथम सर्ग)। वह रतीभान के द्वारा मारा गया।

२३ **कालनेम**—पृथ्वीराज का एक योद्धा था।

२४. **कुसमा** —नरवर के मकरन्द की पत्नी थी। (नवम सर्ग)।

२५. **कुसमा या कुसुमदे**—बून्दी के राजा गंगाधर की पुत्री थी। लाखन के साथ विवाह हुआ। (ग्यारहवाँ व पन्द्रहवाँ सर्ग)।

२६ **कुसला या कुशला**—माड़ों के राजा जम्बे की रानी थी। (तृतीय सर्ग)।

२७. **कुंजर बद**—पृथ्वीराज का एक योद्धा था।

२८ **केसरी**—नैनागढ़ के राजा नैपाली की रानी थी। (षष्ठम सर्ग)।

२९. **केसरी**—बौरीगढ़ के महल की दासी थी। (अष्टम सर्ग)।

३० **केसरी नातिन**—चित्र रेखा की एक दासी थी। (नवम सर्ग)।

६१. **कंठामल**—जूनागढ़ के बिसेन राजा गजराज का पुत्र था। ऊदल के साथ बलख बुखारा गया था।

३२. **खाण्डेराय**—धाँधू का पिता तथा पृथ्वीराज का भाई था।

३३. **खुनखुन कोरी**—महोबा का एक योद्धा था, वह मलखान के विवाह के अवसर पर युद्धरत रहा।

३४. **गंगा ठाकुर**—कुड़हर का पमार लाखन का मामा था। उसने कन्नौज को जाते समय जगनिक का घोड़ा चुराया था। कन्नौज की सेना के साथ महोबा की मुक्ति हेतु वह महोबा आया था। धाँधू ने उसका बध किया।

३५. **गंगाधर**—बूंदी का राजा था। ब्रह्मा के विवाह में शामिल हुआ। उसकी पुत्री का विवाह लाखन के साथ हुआ था।

३६. **गजमोतिन**—जूनागढ़ के राजा गजराज की पुत्री और मलखान की

पत्नी थी । उसकी प्रेतात्मा ने ऊदल को सम्बोधित किया और बेला को सान्त्वना दी ।

३७. **गजराज बिसेन**—जूनागढ़ का बिसेन राजा था । पथरीगढ़ में उसकी एक सुन्दर व सुदृढ़ गढ़ी थी । उसकी पुत्री गजमोतिन का विवाह मलखान के साथ हुआ था ।

३८. **गाँजर के राजा**—बिहार, उड़ीसा, बंगाल तथा आसाम के चार राजा थे । इन्होंने कन्नौज के जयचन्द को १२ वर्ष तक कर नहीं दिया था । ऊदल ने लम्बे समय तक युद्ध करके इन्हें परास्त किया और कन्नौज की अधीनता स्वीकार कराई । (चौदहवाँ, पंद्रहवाँ सर्ग) । उन्होने महोवा को मुक्त कराने वाली सेना में भाग लिया (बाईसवाँ सर्ग) ।

३९. **गुरखा**—बंगाल का राजा था । ऊदल ने बन्दी बनाया था (बारहवाँ सर्ग) । महोबा की दोनों मुक्तियों के अवसर पर साथ दिया (चौदहवाँ तथा सोलहवाँ सर्ग) ।

४०. **गोपी**—पृथ्वीराज का एक पुत्र था । (छठवाँ ब पन्द्रहवाँ सर्ग ।

४१. **गोविन्द राज**—पृथ्वीराज का योग्य सैनिक था । (प्रथम सर्ग) । हमन जमा द्वारा उसका बध किया गया ।

४२. **चंद (कवि चन्दवरदायी)**—पृथ्वीराज का राजकवि था । (प्रथम सर्ग) । युद्ध में अपने आश्रयदाता के साथ रहता था । पृथ्वीराज रायसो का यह प्रणेता पृथ्वीराज के साथ गोर देश में मारा गया । पृथ्वीराज रायसो का एक अंग 'महोबा-खण्ड' इन्होंने लिखा है ।

४३. **चन्दन**—पृथ्वीराज का एक पुत्र था । मलखान के विवाह में आमंत्रित किया गया । (पांचवाँ, छठवाँ, तेरहवाँ व पन्द्रहवाँ सर्ग)।

४४. **चन्दन (दतिया का)**—(चौदहवाँ सर्ग) महोबा की प्रथम मुक्ति के अवसर पर उसने लाखन व ऊदल की सहायता की थी ।

४५. **चन्द्रावल या चन्द्रबेलि**—परमाल एवं मल्हना की पुत्री थी (आठवाँ सर्ग) । बौरीगढ़ के राजा बीरसाह के पुत्र इन्द्रसेन के साथ उसका विवाह हुआ था । महोबा पर चढ़ाई के समय पृथ्वीराज ने अपने पुत्र वाहर के लिए उसका डोला माँगा ।

४६. **चम्पा**—बलख बुखारा के राजा अभिनन्दन की रानी थी । (नवम सर्ग) ।

४७. **चम्पारानी**—जूना गढ़ के राजा गजराज की रानी थी (पंचम सर्ग) ।

४८—**चिन्ता ठाकुर**—रुसनी का यह ठाकुर ऊदल द्वारा बन्दी बनाया गया था । उसने दोनों बार महोबा-मुक्ति में साथ दिया ।

४९—**चिन्ता मन**—यह गोरखपुर का था । महोबा की प्रथम मुक्ति हेतु लाखन व ऊदल के साथ आया था ।

५०—**चित्र रेखा**—बलख बुखारा के राजा अभिनन्दन की पुत्री थी । इन्दल पर मोहित होकर उसे हर ले गई थी । बाद में इन्दल के साथ उसका विवाह हुआ ।

५१—**चूड़ामन**—महोबा का एक ज्योतिषी पण्डित था ।

५२ -**चौंड़ा** -(चामुण्डराय) पृथ्वीराज का सेनानायक था । इकदन्ता हाथी पर सवारी करता था । वह द्रोणाचार्य का अवतार माना गया है । चौड़ा ने धोखे से ब्रह्मा को मारा था । ऊदल का बध किया था । आल्हा ने चौड़ा का बध किया । (६, ८, ९, १३, १६, १८, १९, २२, २४, वें) सर्गों में इस वीर योद्धा का वर्णन मिलता है ।

५३ —**जगमन**—बौरीगढ़ के राजा बीरशाह का पुत्र था ।

५४ —**जगमन**—जिंसी का राजा था । ऊदल द्वारा बन्दी बनाया गया । महोबा-मुक्ति में लाखन व ऊदल का साथ दिया ।

५५—**जगनायक**—परिमाल की बहन का पुत्र था ।

५६—**जम्बे**—माड़ौं का बघेल राजा था । उसके पुत्र, करिया, अनूपी टोडरमल और सूरज थे । उसकी रानी कुसला तथा पुत्री बिजमा थी । आल्हा द्वारा बन्दी बनाया गया । ढेवा ने बध किया । (द्वितीय, तृतीय सर्ग) ।

५७—**जयचन्द**—कन्नौज का अन्तिम राठौर राजा था । रतीमान के भाई अजयपाल का पुत्र था । लाखन का चाचा था । आल्हा-ऊदल को शरण दी और उनकी वीरता पर मुग्ध होकर रिजगिरि की जागीर दी । झुल्ही हथिनी पर सवारी करता था । (१, २, ५, ११, १२, १४, १५ सर्ग) ।

५८—**जवाहिर**—वून्दी के राजा गंगाधर का पुत्र था ।

५९—**जानबेग**—मीरा ताल्हन का एक पुत्र था ।

६०—**जोगा**—नैनागढ़ के राजा नैपाली का पुत्र और आल्हा की पत्नी सुनवाँ का भाई था । मलखान, ब्रह्मा और ऊदल के विवाह में शामिल हुआ । पट्टो के सातन द्वारा उसका बध किया गया । (४, ५, ६, ७, सर्ग) ।

६१—**जोरावर**—बौरीगढ़ के बीरसाह का पुत्र था ।

६२—**टोडर**—बक्सर के बनाफर दस्सराज, बच्छराज और रहमल का भाई था । उनके साथ महोबा आया था और करिया को महोबा के कोट-द्वार से भगाने में सहायक था । उसका पुत्र तोमर था (द्वितीय एवं चतुर्थ सर्ग) ।

६३. टोडर—पृथ्वीराज का एक योद्धा था। ब्रह्मा द्वारा मारा गया था।

२४. टोडरमल—माड़ों के राजा जम्बे का एक पुत्र था, जिसको इन्दल द्वारा बन्दी बनाया गया था और उसका बध किया गया था।

६६. ढेवा—रहमल बनाफर का पुत्र था। मनुरथा नामक घोड़े पर सवारी करता था। वह अच्छा भविष्य वक्ता था। ढेवा ने सदैव आल्हा ऊदल का अच्छा साथ दिया। काव्य से यह स्पष्ट नहीं है कि वह किसके द्वारा मारा गया।

६६. तंकवै—पृथ्वीराज का एक योद्धा था। अभई द्वारा उसका बध किया गया।

६७. ताहर—पृथ्वीराज का एक पुत्र था। वह दलगंजन नामक घोड़े पर सवारी करता था। वह कर्ण का अवतार माना गया है। ताहर बहुत बड़ा योद्धा था। सेना का स्वयं संचालन करता था। आल्ह खण्ड के षष्टम, त्रयोदश तथा चतुर्दश काण्डों में वर्णन है। रणजीत का बध करता है। पन्द्रहवां, सोलहवां तथा अठारहवां काण्ड देखें)। ब्रह्मा को फांसी देने वालों में प्रमुख है। (उन्नीसवां, बीसवां काण्ड)। अपनी बहिन बेला द्वारा मारा जाता है।

६८. तिलका—रतीभान (कन्नौज) की पत्नी तथा लाखन की मां थी।

६९. तेगबहादुर—महोबा का एक योद्धा था। (चतुर्थ कांड)।

७०. तोमर—टोडर बनाफर का पुत्र था। (द्वितीय कांड)।

७१. दलगंजन—(घोड़ा) पृथ्वीराज के पुत्र ताहर के घोड़े का नाम जिस पर वह सवारी किया करता था। (षष्ठम कांड)।

७२. दलपत—यह ग्वालियर का था। देवी एवं बिरह्मा का पिता था। (द्वितीय कांड)।

७३. दरिया खां—मीरा ताल्हन के नौ पुत्रों में से एक था। (चतुर्थ कांड)।

७४. दस्सराज—बक्सर (बिहार) का बनाफर था। अपने भाइयों बच्छराज, रहमल एवं टोडर के साथ महोबा आया। इन्होंने करिया को महोबा के द्वार से पराजित कर भगा दिया था और इसी कारण परिमाल ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्हें अपनी सेना में रख लिया था। ग्वालियर के दलपत की पुत्री देवै (देवल दे) के साथ विवाह किया। उससे दो पुत्र आल्हा एवं ऊदल पैदा हुए। ऊदल का जन्म पिता की मृत्यु के बाद हुआ। दस्सराज और बच्छराज माड़ों के करिया द्वारा मार डाले गए थे और उनके सिर माड़ों के किला द्वार पर लटका दिए गये थे। इनकी आभा बोलती है। (द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ कांडों में इनका विवरण दिया गया है)।

७५ देवी—दक्षिण भारत का मराठा एवं पृथ्वीराज का एक योग्य सैनिक (छठवां, सोलहवां एवं बाइसवां कांड)। ऊदल द्वारा इसका बध किया था।

७६. देवै या देवलदे—ग्वालियर के दलपत की पुत्री एवं दस्सराज की पत्नी तथा आल्हा-ऊदल की मां। वह अपने पुत्रों के साथ देश निकाले के समय कन्नौज जाती है। सदैव अपने पुत्रों को स्वामि धर्म पालन करने की प्रेरणा देती है। इसका वर्णन दूसरे, तीसरे, चौथे, नवें, दसवें, पन्द्रहवें, सोलहवें कांडों में किया गया है। महोबा की दूसरी बार सहायता के समय अपने पुत्रों के साथ कन्नौज से महोबा जाती है।

७७. धनुआं तेली—यह रिजगिरि का था। कन्नौज की सेना का एक योग्य सैनिक था, जो बिलन्दिन नामक घोड़ी पर सवारी करता था। लाखन के विवाह में सम्मिलित होता है। (पंद्रहवां) कन्नौज के लाखन की सेना के साथ महोबा की दूसरी बार सहायता के अवसर पर महोबा जाता है (उन्नीसवां व बाइसवां कांड)। धांधू के द्वारा इसका बध किया जाता है।

७८. धांधू—पृथ्वीराज के भाई खांडे का पुत्र था। दुश्शासन का अवतार कहा गया है। धांधू पृथ्वीराज का एक योग्य सैनिक था, जो भूरानन्द नामक हाथी पर सवारी करता था। (छठवां, चौदहवां, अठारहवां कांड)। ब्रह्मा को फांसी लगाने में सहयोग करता है (उन्सीवां, इक्कीसवां तथा बाईसवां कांड)। धनुआं तेली का बध करता है। (तेईसवां) गंगा का बध करता है तथा लाखन द्वारा मारा जाता है।

७९. नरपत—नरवर का राजा था (छठवां कांड)। ब्रह्मा की बारात में सम्मिलित होता है (सातवां कांड)। उसकी पत्नी का नाम आल्हखण्ड में नहीं दिया गया। उसके पुत्र का नाम मकरन्द तथा पुत्री का नाम फुलवा था। फुलवा का विवाह ऊदल के साथ हुआ था। (आठवां कांड)। उसके बाग में चन्द्रावल का तोता जाता है।

८०. नैपाली—बंगाल के नैनागढ़ का राजा था। उसकी रानी केसरी थी। जोगा, भोगा और विजया उसके तीन पुत्र थे। उसकी पुत्र सुनवां अर्थात् सोनमती थी जिसका विवाह आल्हा के साथ हुआ। उसका भाई हरनन्दन सुन्दरबन में रहता था। उसके पास जादू का ढोल था जिसके बजने पर मृतक जीते थे। (चौथा कांड)।

८१. नैवा—देवलदे की एक दासी थी (तृतीय तथा पंचदश काण्ड) उसके साथ कन्नौज जाती है।

८२. पज्जन—जयचन्द का योद्धा था (प्रथम काण्ड) कुंजरबद के द्वारा मारा गया।

८३. पपीहा (घोड़ा)—दस्सराज के उड़ने बछेड़े का नाम था। (द्वितीय काण्ड)। करिंघा उसे अपने साथ (लूट के माल के साथ) ले गया था (तृतीय)। माड़ों में बदला लेने के बाद आल्हा ने उसे पुनः प्राप्त किया (चतुर्थ)। रुपना द्वारा उस पर सवारी की गई (बारहवाँ)। पट्टी में जोगा ने उस पर सवारी की और सातन ने उसे घायल किया। (पन्द्रहवाँ)। इन्द्र ने यह घोड़ा परमाल को दिया था।

८४. परऊ—परहुल का राजा। (ग्यारहवाँ)। लाखन की बारात में सम्मिलित हुआ। (पन्द्रहवाँ)। उसका भाई सिंहा था। उसकी गढ़ी की चोटी पर दीप गृह था जो कन्नौज से दिखाई देता था। (सोलहवाँ)। परऊ और सिंहा महोबा की दूसरी मुक्ति के अवसर पर भाग लेते हैं। (बाईसवाँ) अंगद का बध करता है और वीर भगुन्ता द्वारा मारा जाता है।

८५. परिमाल या परमर्दिदेव—महोबा का अन्तिम प्रमुख चन्देल राजा था। उसकी रानी मल्हना थी। कीर्तिवर्मन का पुत्र परिमाल प्रतापी राजा था। तीर्थयात्रा करते हुये ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया। अनंगपाल आदि सब राजाओं को अपने वश में कर भेंट लेकर छोड़ दिया। अमरनाथ गुरु की आज्ञा से अपना खांड़ा सागर में पखार कर गुरु की शपथ ले ली और फिर अस्त्र-शस्त्र को हाथ नहीं लगाया। इसी कारण वह युद्ध के नाम से कांप जाता था। परिमाल के दो पुत्र ब्रह्मा और रणजीत थे और उसकी पुत्री चन्द्रावल थी। (द्वितीय)। माहिल के उकसाने पर वह आल्हा और ऊदल को महोबा से निकाल देता है। (चौदहवाँ, सोलहवाँ, अठारहवाँ, तेईसवाँ) आल्हा-ऊदल द्वारा महोबा की प्रथम बार मुक्ति कराये जाने पर वह अपनी भूल स्वीकार करता है और मल्हना तथा ब्रह्मा के साथ जाकर उनसे मिलता है तथा लाखन, आल्हा व ऊदल का उचित सम्मान करता है। आल्ह-ऊदल को पुनः महोबा रहने का आग्रह करता है, किन्तु वे महोबा में न रुक कर पुनः कन्नोज चले जाते हैं। वह मृत्युपर्यन्त उपवास करता है।

८६. पश्चावद (हाथी)—इन्द्र द्वारा प्रदत्त गज पश्चावद पर दस्सराज सवारी करता था। (द्वितीय) जम्बे का बेटा करिया लूट के माल के साथ इसे माड़ों ले गया था। (तृतीय)। अपने बाप का बदला करिया से लेने के बाद आल्हा उसे अपने साथ महोबा ले आया था और उस पर सवारी करता रहा। (चौथा, दसवाँ, बारहवाँ तथा तेईसवाँ)।

८७ पुहपा (मालिन)—बौरीगढ़ राजमहल की दासी थी। (आठवाँ)।

८८. पूरन—पजना का राजा था। (चतुर्थ)। नैनागढ़ के नैपाली का मित्र था। (बारहवाँ)। ऊदल के द्वारा बन्दी बनाया गया। (सोलहवाँ) उसने पृथ्वीराज से मित्रता की और बेतवा के युद्ध में उसका साथ दिया।

८९. पूरन—पुरा का था। (चौदहवाँ)। महोबा की प्रथम मुक्ति में साथ दिया।

९०. पृथ्वीराज—दिल्ली का चौहान राजा था। (कभी-कभी बादशाह भी कहा गया)दुर्योधन का अवतार माना गया। उसकी रानी अगमा थी। उसके सात पुत्र थे—(१) सूरज (२) चन्दन (३) मर्दन (४) सरदन (५) गोपी (६) मोती और (७) लाहर। उसकी पुत्री बेला थी और धांधू का पिता खाण्डेराय उसका भाई था। वह आदि भयंकर हाथी पर सवारी करता था। (प्रथम)। वह शब्दबेधी बाण चलाने में अचूक था। चन्दवरदायी उसका राज कवि था जिसने 'पृथ्वीराज रायसो' की रचना की। कन्नौज से संयोगिता का अपहरण करता है। (पंचम)। मलखान के विवाह में आमंत्रित किया जाता है। (छठवां)। उनकी पुत्री बेला परिमाल के पुत्र ब्रह्मा के साथ ब्याही जाती है। (आठवां)। चन्द्रावल की चौथी के लिए बौरीगढ़ जाते समय ऊदल को सहायता करता है। (दसवाँ) परिमाल का समर्पण मांगता है। (ग्यारहवां, तेरहवाँ)। सिरसा को जीतता है। (चौदहवां)। महोबा पर घेरा डालता है। (पंद्रहवाँ)। आल्हा की वापसी का विरोध करता है और नदी के घाट घिरवा देता है। (सोलहवाँ)। बेतवा के युद्ध में आल्हा द्वारा पराजित होता है। (सत्रहवाँ, अठाहरवाँ तथा उन्नीसवाँ)। अपनी पुत्री बेला को उसके पति ब्रह्मा के साथ महोबा भेजने से इन्कार करता है। (बीसवाँ, बईसवाँ तथा तेईसवाँ)। लाखन का वध करता है। आल्हा के द्वारा विजित किया जाता है। उसके सातों पुत्र मारे जाते हैं। चौंड़ा आदि बड़े-बड़े योद्धा भी मारे जाते हैं।

९१. फुलवा—नरवर के राजा नरपत की पुत्री थी। वह जम्बे की पुत्री विजैसिन का अवतार थी। (सातवाँ) उसका विवाह ऊदल के साथ हुआ। (नवें, सत्रहवें, बीसवें तथा तेईसवें काण्ड में वर्णन है) अन्त में वह अपने को अग्निकुण्ड में डालती है।

९२. फुलिया मालिन—गजमोतिन जो मलखान की पत्नी थी की दासी थी। (पंचम सर्ग)।

९३. बच्छराज—बच्छराज बक्सर का बनाफर था। वह अपने भाइयों दस्सराज, रहमल तथा टोंडर के साथ महोबा आया था। करिया से महोबा की रक्षा करने पर दस्सराज को दस पुरवा तथा बच्छराज को सिरसा की

जागीर परिमाल ने दे दी थी। उसका विवाह ग्वालियर के दलपत की पुत्री बिरह्मा से हुआ था। उसके दो पुत्र मलखान एवं सुलखान थे। सुलखान अपने पिता के मृत्यु के बाद वसुन्धरा पर आया था। बच्छराज का बध वत्सराज के साथ माड़ों के करिया ने किया और दोनों की खोपड़ियाँ माड़ों के किला द्वार पर बरगद के पेड़ से टँगवा दी थीं। (द्वितीय तथा चतुर्थ)।

९४. बनौधा—बनौधा के बारह राजकुमार ऊदल तथा लाखन को महोबा की मुक्ति के अवसर पर सहायता करते हैं। (चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ तथा बाईसवाँ), बनौधा उत्तर प्रदेश का वह भूभाग है जिसमें दक्षिणी अवध, जौनपुर, आजमगढ़ तथा बनारस के जिले शामिल हैं।

९५. ब्रह्मा—ब्रह्मानन्द महोबा के चन्देल राजा परिमाल और रानी मल्हना का पुत्र था। वह हरनागर घोड़े पर सवारी करता था। वह एक वीर योद्धा था। द्वितीय, पाँचवाँ तथा छटवाँ)। वह अर्जुन का अवतार माना गया है। उसका विवाह पृथ्वीराज की पुत्री बेला के साथ हुआ था। (आठवाँ, ग्यारहवाँ तथा बारहवाँ सर्ग)। कलह प्रिय माहिल के कहने से पृथ्वीराज ने महोबा पर चढ़ाई की। उस समय ब्रह्मा ही अकेला वीर था जो महोबा की रक्षा कर सकता था। क्योंकि आल्हा और ऊदल को परिमाल ने निकाल दिया था और वे कन्नौज में थे। अपने छोटे भाई रणजीत और माहिल पुत्र अभई के मारे जाने पर ब्रह्मा ने युद्ध किया। जब वह किसी से न जीता जा सका, तब पृथ्वीराज स्वयं क्रोध कर युद्धरत हुआ। उसने अर्द्धचन्द्राकार बाण ब्रह्मा को मारने के लिये सँवारा। ब्रह्मा ने शीघ्रता के साथ एक तीक्ष्ण बाण पृथ्वीराज को मारा और पृथ्वीराज को मूर्छित कर दिया गया। रणभूमि में पृथ्वीराज की सेना मे हाहाकार मच गया। इसी बीच लाखन और ऊदल जोगी वेश में रणभूमि में पहुँच गए और उन्होंने ब्रह्मा की तथा महोबा की रक्षा की। पृथ्वीराज वापस दिल्ली चला गया। बेला के गौने के अवसर पर दुरात्मा माहिल ब्रह्मा को अकेले दिल्ली ले गया और वहाँ युद्ध कराया। ब्रह्मा बड़ी वीरता से लड़ा। चौंड़ा, ताहर और धाँधू ने मिलकर अनीति से उसे फाँसी लगाने का प्रयास किया। (उन्नीसवाँ)। ताहर ने धोखा देकर उसे घायल कर दिया। इतने में ऊदल पहुँच गया और उसे घायल अवस्था में वहाँ से ले आया। (बीसवाँ) बेला ने ताहर से प्रतिशोध लिया और उसका सिर काट लिया। (इक्कीसवाँ)। घावों के कारण वह मर जाता है और बेला सती हो जाती है। (तेईसवाँ)।

९६ बिरह्मा—ग्वालियर के दलपत की पुत्री एवं बच्छराज की पत्नी तथा मलखान व सुलखान की माँ थी। (दूसरा, चौथा, आठवाँ सर्ग)। अपने पुत्रों के साथ सिरसा में थी। सिरसा विध्वंस के पश्चात् उसका नाम नहीं आया (चौदहवाँ सर्ग संदर्भित।

९७. बीरसाह जादौन—बौरीगढ़ का राजा था। मलखान, ब्रह्मा और ऊदल के विवाह में सम्मिलित होता है। (पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ)। भूरा हाथी पर सवारी करता है। उसकी रानी का नाम सुंदरी था। जोरावर, सूरजमल, इन्द्रसेन, मोहन, जगमन तथा दो अन्य पुत्र थे। इन्द्रसेन का विवाह चन्द्रावल के साथ हुआ था। (ग्यारहवां)।

९८. बीरसिंह—बीरसिंह (बिरसिंह) तथा हिरसिंह दो भाई थे। गोरखपुर के निकट बिरिया रियासत के राजा थे। (बारहवाँ)। दोनों भाई ऊदल के द्वारा बन्दी बनाये (चौदहवाँ एवं सोलहवाँ)। कन्नौज की सेना के साथ महुबा की सहायता हेतु महोबा आये। (इक्कीसवाँ)। दोनों भाई बीकानेर के विजयसिंह द्वारा मार डाले गये।

९९. बेंदुला घोड़ा—ऊदल के उड़न बछेड़े का नाम था। इसको रसबेंदुल भी कहा गया है। (तृतीय, चतुर्थ तथा अन्य सर्ग)।

१००. बेनी चक्रवै—वह कन्नौज के राजा थे। लाखन के पितामह थे।

१०१. बेनी ब्राह्मण—यह कन्नौज का एक ज्योतिषी था। (ग्यारहवाँ)।

१०२ बेला—पृथ्वीराज एवं रानी अगमा की पुत्री का नाम बेला था; उसे बिलमदे भी कहा गया है। बेला द्रौपदी का अवतार मानी गई है। परिमाल के पुत्र ब्रह्मा के साथ विवाह हुआ। (अठारह एवं उन्नीस)। उसके भाई ताहर ने बेला के पति ब्रह्मा को चौंड़ा और धांधू की सहायता से नागफाँस में बाँधा था और उसे अनीति से घायल किया था। बेला ने अपने पति का बदला लेने के लिये ताहर का सिर काट लिया और ब्रह्मा के सामने प्रस्तुत किया था। (इक्कीसवाँ तथा तेईसवाँ)। वह ब्रह्मा के साथ सती हो गई।

१०३. बौना—गंगा पंवार की अनुपस्थिति में कुड़हर का कार्यवाहक था।

१०४. रंगा—माड़ों के राजा जम्बे का प्रमुख सेनापति था। वह पठान था। उसका वध ढेवा द्वारा किया गया। (तृतीय)।

१०५. बंसगोपाल—बंसगोपाल दतिया का था और पृथ्वीराज का एक वीर योद्धा था। लाखन द्वारा उसका बध किया गया (सोलहवाँ),

१०६. भूरा—बौरीगढ़ के बीरसाही की सवारी के हाथी का नाम (नवम)। पट्टी के (हाथी) सातन की सवारी वाले हाथी का भी नाम भूरा था (बारहवाँ)।

१०७. भूरा मुगुल—पृथ्वीराज का एक वीर योद्धा था। (चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ, (उन्नीसवाँ तथा तेईसवाँ)। मीरा ताल्हन ने उसका बध किया।

१०८. भूरी (भुरही) हथिनी—जयचन्द एवं लाखन द्वारा सवारी की जाने वाली श्वेत (भूरे) की हथिनी। (बारह, पन्द्रह, सोलह, उन्नीस व तेईस)।

१०९ भोगा—नैनागढ़ के राजा नैपाली का पुत्र व आल्हा की पत्नी सुनवाँ का भाई था। (चौथा, पाँचवाँ)। मलखान के विवाह में सहायता की और ब्रह्मा की बरात में सम्मिलित हुआ (छठवाँ, सातवाँ)। ऊदल के विवाह में गया (बारहवाँ)। पट्टी में सातन के द्वारा दोनों भाई भोगा तथा जोगा मारे गये (पन्द्रहवाँ)।

११० भौरानन्द हाथी—धाँधू के हाथी का नाम था। (सोलहवाँ)।

१११. मकरन्द—नरवर के राजा नरपत का पुत्र तथा ऊदल की पत्नी फुलवा का भाई था। (सातवाँ व नवाँ)। ऊदल के साथ बलखबुखारा गया था।

११२. मछला—देवै अथवा देवलदे का दूसरा नाम था। वह आल्हा और और ऊदल की माँ थी (छठवाँ, दसवाँ, व बारहवाँ)।

११३. मदन गड़रिया—महोबा का एक योद्धा था। (पंचम)। मलखान के विवाह में पथरीगढ़ गया था। (ग्यारहवाँ) लाखन के विवाह में मलखान की सेना के साथ जाता है।

११४—मदनगोपाल—पठोंज का राजा था। सिरौंज के रूपन के साथ सदैव रहता था। दोनी महोबा के मित्र थे। (पाँचवाँ, चौदहवाँ)।

११५—मधुकर—चित्तौड़ का था। महोबा का एक मित्र था। (चौदहवाँ)।

११६—मन्नागूजर—महोबा का एक योद्धा था। (चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ)। रहमत का बध करता है। (सातवाँ, ग्यारहवाँ)।

११७—मनियाँदेव—महोबा का संरक्षक देवता। (चौथा)।

११८—मनुरथा—(घोड़ा)—ढेवा की सवारी का उड़न बछेड़ा था। (तीसरा, चौथा, बारहवाँ एवं सत्रहवाँ)।

११९—मनोहर—यह मुरली का भाई था। दोनों कटक के राजा थे। (बारहवाँ) ऊदल के द्वारा बन्दी बनाया गया। (चौदहवाँ) दोनों भाई महोबा की प्रथम सहायता हेतु जाते हैं, "किन्तु उनको कालपी का बताया जाता है कटक का नहीं।"

१२०—मरदन—पृथ्वीराज का एक पुत्र। (छठवाँ, चौदहवाँ) ब्रह्मा के द्वारा मारा गया। पुनः अठारहवें सर्ग में मारा जाना कहा गया है जो एक विसंगति है।

१२१—मलखान—बच्छराज बनाफर एवं बिरम्हा का पुत्र था। सहदेव

का अवतार माना जाता है। एक महान् योद्धा था जिसके चरण में पद्म था। पद्म फटने पर ही वह मारा जा सकता था। उसका भाई सुलखान था। कबूतरी घोड़ी पर सवारी करता था। (द्वितीय व तृतीय) माड़ों के करिंघा का बध किया। (पंचम) जूनागढ़ के राजा गजराज की पुत्री गजमोतिन के साथ उसका विवाह हुआ था। पृथ्वीराज ने उसके पिता बच्छराज से सिरसा छीन लिया था और पारस की जागीर के रूप में दे दिया था। (छठवाँ) सिरसा को छीन कर किला बनाता है और वहाँ का अधिपति रहा। (सातवाँ, आठवाँ, नवाँ) ऊदल के विरुद्ध सिरसा का द्वार बन्द करता है। (दसवाँ) आल्हा के देश निकाल के बाद सिरसा में ही रहता है। (ग्यारहवाँ) लाखन के विवाह में सहायक सेना का नेतृत्व करता है। (तेरहवाँ पृथ्वीराज के साथ माहिल के द्वारा षड्यंत्र रचे जाने पर मारा जाता है। उसकी घोड़ी कबूतरी भी मारी जाती है। उसके मरने के बाद महोबा के लिए दिल्ली से आने का मार्ग अरक्षित हो जाता है। (चौदहवाँ)। उसकी प्रेतात्मा ऊदल को सम्बोधित करती है। किन्तु सत्रहवें सर्ग में पुनः ऊदल की सहायता हेतु सेना के साथ सम्मिलित होगा कहा जाता है जो मलखान के सम्बन्ध में एक बहुत बड़ी विसंगति है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सर्ग का क्रम ही भिन्न हो भिन्न हो, (यहाँ पर गलत स्थान पर है)। (तेईसवें सर्ग में पुनः मारा जाना दिखाया गया है)। पृथ्वीराज भी मलखान की वीरता का लोहा मानता था इसलिए वह मलखान से कतराता था किन्तु अहितचिंतक माहिल के कारण इस वीर अन्त होता है।

१२२—मलहना—वासुदेव की पुत्री, माहिल की बहिन तथा महोबा के चन्देल राजा परिमाल की रानी थी। वह बड़ी बुद्धिमान थी। राज्य का कार्य-भार वह अपने भाई माहिल की मदद से सम्भालती थी। उसका पुत्र ब्रह्मा और पुत्री चन्द्रवल थी। वह आल्हा, ऊदल, मलखान को बहुत प्यार करती थी। संकट आने पर वह परिमाल की भी सलाह नहीं मानती थी। पृथ्वीराज के महोबा पर आक्रमण के समय वह आल्हा-ऊदल को कन्नौज से बुलवाती है और वे आकर महोबा की रक्षा करते हैं तथा पृथ्वीराज को पराजित करते हैं। (दूसरा, चौथा, छठा आठवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ सोलहवाँ, अठारहवाँ, बीसवाँ, तेईसवाँ सर्गों में उनका उल्लेख हैं,। पारस पथरी सागर में फेंक देती है।

१२३—मानसिंह—एक राजा था जो जूनागढ़ के बिसेन राजा गजराज का मित्र था। रूपना द्वारा ऐनपनवारी नेग के समय घायल किया गया।

१२४—माहिल (परिहार)—वासदेव पुत्र तथा रानी मल्हना का भाई माहिल परिहार उरई का था। वह महोबा का जागीरदार था। परमाल का प्रमुख सनाह कार था। वह बहुत बड़ा चुगल खोर था। महोबा का सदैव अहित चिंतक रहा और उसने सदा महोबा को नीचा दिखाने का प्रयास किया। ऐसा करने में उसने नीति-अनीति का ध्यान नहीं किया। इस दृष्टि से यदि माहिल को आल्हाखण्ड का खलनायक कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। महोबा को मिटाने के लिए उसने अजीवन षड़यंत्र रचे। उनका पुत्र अभयी राजभक्त था। माहिल लिल्ली घोड़ी पर सवारी करता था। कानपुर के आजमऊ के मेले से लेकर मलखान के विवाह के समय, बेला के विवाह के अवसर पर, चन्द्राबल की चौथी के समय, बिठूर के गंगादशहरा के मेले आदि में लेकर पृथ्वीराज द्वारा महोबा पर चढ़ाई करने तक माहिल षड़यंत्र का काम करता रहा और उसने कन्नौज, दिल्ली और महोबा का विनाश कर दिया। दूसरे, चौथे, पन्द्रहवें, अठारहवें तथा उन्नीसवें सर्गों में उसके कार्य-कलापों का उल्लेख है।

१२५—मीरा वाल्हन—बनारस का सैय्यद था। दस्सराज, वच्छराज, रहमल तथा टोडर बनाफरों के साथ महोबा आया था। उसके नौ पुत्र और अठारह पौत्र थे। पुत्र:-१-अली २-अलामत ३-दरिया खाँ ४-जानेवेश ५-सुलताना ६-मियाँ बिसारत ७-सुरमा खाँ ८-कारे और ९-कैयन थे। वह आल्हखण्ड के पूरे चक्र में संरक्षक के रूप में सामने आता है। वह बहुत बड़ा योद्धा था। सिहनी नाम की घोड़ी पर सवारी करता था। (द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, दशम)। महोबा छोड़ने पर आल्हा-ऊदल के साथ कन्नौज जाता है और उनके साथ रहता है। (ग्वारहवां, चौदहवां)। महोबा की प्रथम व द्वितीय मुक्ति हेतु आल्हा-ऊदल के साथ आता है। (पन्द्रहवां, सोलहवां, अठारहवां तथा उन्नीसवां बाईसवां तथा तेईसवां सर्ग)। भूरा मुगुल का वध करता है और वीर भुगन्ता द्वारा मारा जाता है।

१२६—मुकुन्द—पृथ्वीराज का योद्धा था। (प्रथक) रतीभान द्वारा मारा गया।

१२७—मुरली—कटक का राजा तथा मनोहर का भाई। (बारहवां) ऊदल के द्वारा बन्दी बनाया गया। (चौदहवां) महोबा को प्रथम मुक्ति में दोनों भाई शामिल हुए थे। किन्तु उन्हें कालपी का बताया गया। यह एक बिसंगति है।

१२८—मोती—पृथ्वीराज का एक पुत्र था। (षष्ठम सर्ग)।

१२९—मोती—बून्दी के राजा गंगाधर का पुत्र था। (ग्यारहवां सर्ग)।

१३०—मोहन—बलखबुखारा के राजा अभिनन्दन के सात पुत्रों में से एक था। (नवां)।

१३१—मोहन—हरदीगढ़ का था। (चौदह) महोबा की प्रथम मुक्ति में साथ देता है।

१३२. मोहन—बौरीगढ़ के बीरसाहि का पुत्र था। (पंचम) मलखान के विवाह में सम्मिलित होता है। इसी प्रकार ब्रह्मा के विवाह में भी शामिल होता है। (छठवां व आठवां)।

१३३. रणजीत—परमाल पुत्र ब्रह्मा का छोटा भाई था। (चौदहवां) ताहर के द्वारा मारा गया।

१३४. रणधीर - पृथ्वीराज का एक योद्धा था। (छठवां)।

१३५. रतीभान—कन्नौज के राजा जयचन्द का भाई था। उसकी पत्नी तिलका व पुत्र लाखन था। (प्रथम) कान्हकुंअर के द्वारा मारा गया।

१३६. रहमत—जिन्सी का था और पृथ्वीराज का एक योद्धा था। (षष्ठम) मन्नागूजर द्वारा वध किया जाता है। (सोलहवां) बेतवा के युद्ध में पुन: प्रगट होता है। अतः यह एक विसंगति है। दोनों अवसरों पर सहमत के साथ दिखाया जाता है।

१३७. रहमल—बक्सर का बनाफर था। अपने भाइयों दस्सराज, वच्छराज तथा टोडर के साथ महोबा आता है। वह परमाल की सेना का एक सैनिक बनता है। उसका पुत्र ढेवा है। द्वितीय व चतुर्थ)

१३८. रूपना या रूपन बारी—जाति का बारी था। बड़ा बहादुर था। ऐपनवारी नेग चुकाते समय अनेक बार वीरता का परिचय दिया। उड़न बछेड़ों पर सवारी करके ऐपनबारी नेग लेकर जाता था। महोबा का दूत था। (तृतीय, सप्तम, नवम, एकादशा तथा षोड्ष)।

१३९. रूपन—सिरोंज का राजा था। महोबा का मित्र था (ग्यारहवां सर्ग)। पटौंज के मदनगोपाल के साथ नाम आया है (पाँचवां व चौदहवां सर्ग)।

१४०. रूपा—माड़ौं की रानी कुसला की दासी थी (तृतीय)।

१४१ रंगा—माड़ौं के राजा जम्बे का एक पठान सेनानायक था। (तृतीय) ऊदल के द्वारा वध किया गया।

१४२. लला तमोली—(११, १५) महोबा की मुक्ति के लिये दूसरी सेना के साथ जाता है। (१०,१२) चन्दन के खम्भों को अधिकार मे करने के लिये ऊदल का साथ देता है।

१४३. लाखन (राना)—रतीभान का पुत्र और जयचन्द का भतीजा था, जो कन्नोज का उत्तराधिकारी था। वह भूरी अथवा भुरुही हथिनी पर सवारी करता था। (पंचम) मलखान की बारात में एक प्रमुख अतिथि था। (६, १०, ११, १४, १६) दोनों बार महोबा की मुक्ति हेतु सेना का संचालन करता है। (१०, १८, १६,) वह नकुल का अवतार माना गया है। २०, २२ व २३) धांधू का बध करता है और पृथ्वीराज द्वारा मारा जाता है।

१४४. लाखापातुर—दस्सराज का नृत्यांगना थी। करिंघा उसे अपने साथ ले गया था (द्वितीय)। अपने बाप का करिंघा से बदला लेने के बाद आल्हा-ऊदल उसे अपने साथ महोबा वापस लाये। (तृतीय)।

१४५. लिल्ली घोड़ी—माहिल की घोड़ी का नाम था (तृतीय)।

१४६. लंगड़ीपत—कन्नोज के जयचन्द का एक योद्धा था। (प्रथम) गोबिन्द राज के द्वारा मारा गया।

१४७. बिजयसिंह—यह बिजहट का था। (सप्तम) नरवर के नरपत का मित्र था।

१४८. बिजयसिंह—यह बीकानेर का था और पृथ्वीराज का गौरवशाली योद्धा था। (इक्कीसवां) हिरसिंह, बिरसिंह को मारता है एवं गंगा के द्वारा मारा जाता है।

१४९. बेर सिहनी—करहर के परमार गंगा ठाकुर की सवारी में प्रयुक्त होने वाली हथिनी थी (पंचम)।

१५०. सब्जा (घोड़ा)—(अष्टम) पृथ्वीराज के पुत्र सूरज के घोड़े का नाम था। (एकादश) लला तमोली के घोड़े का नाम था। (बाईसवां) भोगा के घोड़े का भी सब्जा नाम था।

१५१. सरदन—पृथ्वीराज का एक पुत्र जिसका बध ब्रह्मा के द्वारा किया किया गया (६ व १४)।

१५२. सहमत—यह जिन्सी का था, पृथ्वीराज का एक योद्धा था। (छठवां) देवा के द्वारा मारा गया। (सोलहवां) पुनः बेतवा के युद्ध में प्रकट हुआ है (यह एक विसंगति प्रतीत होती है)। दोनों अवसरों पर उसको रहमत के साथ सम्बद्ध किया गया है।

१५३. सहुआ—सुभिया बिड़नी के भाई का नाम था (सत्रहवां)।

१५४. सातन—यह पट्टी का राजा था। भूरा नामक हाथी पर सवारी करता था। (बारहवां) जोगा एवं भोगा को मारता है और घोड़ा पपीहा को घायल कर देता है। ऊदल द्वारा वन्दी बनाया जाता है। (चौदहवां) महोबा की प्रथम मुक्ति हेतु सहायक होता है।

१५५. सारदा—महोबा की संरक्षक देवी भगवती को यह नाम दिया गया है (तृतीय व अन्य)।

१५६. सिधा—परसू का भाई था। (५, १५ व १६) महोबा की द्वितीय मुक्ति के अवसर पर सेना के साथ आया।

१५७. सीतामक्तिन—जूनागढ़ की जादूगरनी थी (पंचम)।

१५८. सुखा—बलखबुखारा के राजा अभिनन्दन के पुत्रों में से एक था (नवम)।

१५९. सुखिया—पृथ्वीराज की एक दासी थी जो भूमिगत होकर कन्नोज चली गई (प्रथम)।

१६०. सुखिया बरैनयह पुरवा की थी (बीसवां)।

१६१ सुघरित हरी अथवा सुघित—जयचन्द का योद्धा था। (प्रथम) हरसिंह के द्वारा बध किया गया।

१६२. सुन्दरी—बौरीगढ़ के राजा बीरसाह की रानी थी।

१६३. सुनवां (या सुनमा या सोनमती या सुलक्षण)—नैनागढ़ के राजा नैपाली की पुत्री थी। वह जादूगरी में योग्य थी। उसके तोता का नाम हीरा-मन था। (चतुर्थ) आल्हा के साथ उसका विवाह हुआ। (पंचम) सीमा मक्तिन को जादूगरी में परास्त किया। (६, ७, ६, १४) महोबा की मुक्ति के लिये ऊदल के जाने के योजना से सहमत होती है। (१७) उसका हार बिठूर में चोरी चला जाता है। जादूगरी में सुभिया, बिड़नी को परास्त करती है। (२०, २३) स्वयं का अग्निकुण्ड में दाह करती हैं।

१६४ सुफना—लाखन का महावत था (१६ व २३)।

१६५ सुनिया बेड़नी—एक खाना बदोस लड़की थी। (सत्रह) ऊदल को तोता बनाकर हरण करती है।

१६६. सुरखा (घोड़ा)—चन्द्रावल का पति एवं बौरीगढ़ के बीरसाह के पुत्र इन्द्रसेन के घोड़े का नाम था। (अष्टम)।

१६७ सुरजा—जूनागढ़ के राजा गजराज बिसेन का एक पुत्र था (पंचम)।

१६८. सुलखान या (सुलखे)—बच्छराज बनाफर एवं बिरम्हा का पुत्र था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका जन्म हुआ था। मलखान का छोटा भाई था। वह हिरोंजिन नामक घोड़ो पर सवारी करता था। (सातवां)। मलखान की अनुपस्थिति में सिरसा का कार्यवाहक रहा (२, ३, ५ व ६)।

१६९. सुलतान—मीरा ताल्हन के नौ पुत्रों में से एक था (२ व ४)।

१७०. सूरज—माड़ों के राजा जम्बे का पुत्र था (तृतीय)। ऊदल द्वारा उसका बध किया गया।

१७१. **सूरज**—पृथ्वीराज का पुत्र था। वह सब्जा नामक घोड़े पर सवारी करता था (६ व ८)। ऊदल के साथ, उसकी सहायता हेतु, बौरीगढ़ गया। चौदहवें सर्ग में उसका बध अभई द्वारा वर्णित है, जबकि अठारहवें सर्ग में ब्रह्मा द्वारा उसके बध का उल्लेख किया गया है। सूरज के विषय में यह एक विसंगति है।

१७२. **सूरज**—यह गोरखपुर का राजा था। (बारह) ऊदल के द्वारा बन्दी बनाया गया।

१७३. **सूरज**—बांदा का राजा था। (तेरह) मलखान द्वारा उसका बध किया गया।

१७४. **सूरजमल**—बौरी गढ़ के बीर साह का एक पुत्र था (आठवां)।

१७५. **सूरत हाडा**—पृथ्वीराज का एक योद्धा था (तेरह)। मलखान द्वारा मारा गया।

१७६. **संजोगिन**—कन्नौज के राजा जयचन्द की पुत्री थी। (प्रथम) पृथ्वीराज के द्वारा, उसके स्वयंवर के समय, अपहृत की गई।

१७७. **हन्नामल**—बलखबुखारा के राजा अभिनन्दन का पुत्र था।

१७८ **हमनजमा**—जयचन्द का एक योग्य सैनिक था। (प्रथम) गोविन्द राज को मारता है।

१७९. **हन्सामन-(घोड़ा)**—इन्दल की सवारी का घोड़ा था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह करिलिया का दूसरा नाम है। दूसरा घोड़ा भी हो सकता है। यदि यह करिलिया का नाम है तो यह नाम माड़ों से पुनर्प्राप्ति के पूर्व रहा होगा। अधिक युक्ति संगत यही प्रतीत होता है कि यह अन्य घोड़ा था। इसका विवरण (१२,१७, व २३) में मिलता है।

१८०. **हन्सामन**—कासी (बनारस) का राजा था। (बारह) ऊदल के द्वारा बन्दी बनाया गया।

१८१—**हरनागर (घोड़ा)**—महोवा के राजा परमाल के पुत्र ब्रह्मा की सवारी का उड़न बछेड़ा। (चतुर्थ व पंद्रह) जगनिक ने सवारी की। (छठवां) रूपना ने सवारी की। (अठारह) ब्रह्मा ने सवारी की।

१८२. **हरसिंह ठाकुर**—पृथ्वीराज का एक बहादुर योद्धा था (प्रथम) सुधित को मार कर युद्ध में मारा जाता है।

१८३. **हरिनन्दन**—यह सुन्दर वन का था और नैनागढ़ के नेपाली का भाई था। (चतुर्थ।)

१८४. **हिरसिह**—गोरखपुर के पास बिरिया रियासत के राजा बिरसिंह का भाई था। (बारह) दोनों भाई ऊदल के द्वारा बन्दी बनाये गये। (१४, १६) कन्नौज की सेना के साथ महोबा मुक्ति हेतु महोवा आये। (२१) दोनों बीकानेर के विजयसिंह द्वारा मारे गये।

१८५ **हिरिया मालिन**—फुलवा के माली की पत्नी थी और नरपत की पुत्री थी। उसका पालन-पोषण नैनागढ़ में सुनवां के साथ उसकी बहिन की भांति हुआ था। सुनवां का विवाह आल्हा के साथ हुआ था। सुनवां की भांति हिरिया भी जादूगरनी थी। वह ऊदल को पान खिलाया करती थी और उससे प्रेम करती थी।

१८६. **हिरौंजिन (घोड़ी)**—मुलखान की घोड़ी का नाम था (६; ७)।

१८७. **हीरामन**—यह चरखारी का था। पृथ्वीराज का एक योद्धा था। (२१) गंगा ठाकुर द्वारा मारा जाता।

१८८ **हीरामन (तोता)**—नैनागढ़ की राजकुमारी सुनवां का तोता था। (४)।

१८९. **हीरामन- (तोता)**—चन्द्रावल के तोते का नाम था (८)।

टिप्पणी—क्रमांक ३८ में गांजर के जिन चार राजाओं का उल्लेख किया गया है, उनका विवरण अन्यत्र में दिया जा चुका है। वास्तव में गांजर क्षेत्र के बारह राजा ऐसे थे जिन्होंने कन्नौज के राजा जयचन्द को कर देना बन्द कर दिया था। इन राजाओं को ऊदल ने परास्त करके कन्नौज का बारह वर्ष का कर वसूल किया था। (१) बिरियागढ़ (गोरखपुर) के राजा हिरसिंह तथा बिरसिंह, (२) गोरखपुर के राजा सूरज (३) पट्टी प्रतापगढ़) के राजा सात, (४) काशी के राजा हंसामन, (५) जिन्सी के राजा जगमन, (६) पटना (बिहार) के राजा पूरन, (७) रूसनी के राजा चिन्ता ठाकुर, (८) कटक (उड़ीसा) के राजा मुरली तथा मनोहर, (९) बंगाल के राजा गुरखा तथा (१०) कामरू (असम) के राजा कमलापत।

क्रमांक ११२ में उल्लिखित पात्र 'मछला' आल्हा की मां देवै अथवा देवलदे का ही दूसरा नाम था। इस प्रकार कुल पात्र संख्या १८९ न होकर १८४ ही है जिसको आरम्भ में इंगित किया जा चुका।

पाठकों को विदित है कि मध्यकालीन उत्तर भारत का विशेषकर बुन्देलखण्ड का, इतिहास अधिकांशतः चारणों द्वारा लिखित वीरगाथाओं में अंकित तथ्यों पर ही आधारित है। अन्यत्र, तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। यदि कुछ शेष है तो वह हैं तत्कालीन शिलालेख एवं ताम्र पत्र, जो अब केवल आरकाइव्ज में उपलब्ध हैं अथवा धरती के गर्भ में हो सकते हैं। किन्तु सम्प्रति ऐसी सामग्री क्रमबद्ध रूप में क्षेत्रानुसार व्यवस्थित नहीं की गई। वह विभिन्न स्थानों में स्थित आरकाइव्ज में बिखरी पड़ी है। अतः

इनपर कार्य करना अपने आप में एक शोध का विषय है, जिस पर शोध-छात्र कार्य कर सकते हैं।

संदर्भित जगनिक कृत मनमोहक, उत्साह बर्धक वीरकाव्य 'आल्हखण्ड' को 'ऐपिक' कहा जा सकता है, हाँ कुछ अतिशयोक्तियाँ हैं, जैसे बार-बार लाखों की संख्या में सैनिकों का विनाश आदि। किन्तु प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में वर्णित सामग्री, जैन विद्वानों कृत साहित्य तथा अंग्रेज विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विषय वस्तु, एवं लोकजीवन के कण-कण में व्याप्त मान्यताओं के आधार 'आल्हखण्ड' उसके पात्र तथा तथ्य वास्तविक कहे जाने चाहिए।

लोक गाथाओं की परम्परा और आल्हाखंड

● डा० दुर्गेश दीक्षित

बुन्देलखंड में अनेक लोकगाथायें प्राप्त होती हैं। इस क्षेत्र में रासो, राछरे, पँवारे, साके चरित्र लोकगाथाओं के रूप में प्रचलित हैं। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, खुमान रासो, परमाल रासो, लोकगाथाओं के रूप हैं। जगदेव कौपँवारो, लक्ष्मीबाई को राछरो, अमानसिंह को राछरो, अमरसिंह को साको, लोकगाथायें ही हैं। इनके अतिरिक्त हरदौल चरित्र, सरमन चरित्र, सुलोचना चरित्र, प्रहलाद चरित्र को भी लोकगाथाओं की संज्ञा दी जा सकती है। चरित्र के नाम से आदर्श प्रधान एवं धर्मप्रधान गाथायें प्रचलित हैं। अधिकांश गाथायें कल्पना पर आधारित हैं, किन्तु उनमें ऐसिहासिक तत्व का समावेश भी है। कल्पना-प्राचुर्य के कारण कुछ गाथाओं की ऐतिहासिकता समाप्त सी हो गई है। गाथा में इतिहास प्रसिद्ध नामावली के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। पृथ्वीराज रासो की विशालता को दृष्टिपथ में रखते हुए यह बात स्पष्ट ही हो जाती है।

अधिकांश लोकगाथायें मौखिक रूप में ही प्राप्त होती हैं। अज्ञानता एवं अनुकरण-अपूर्णता के कारण उनमें बहुत हेर-फेर हो गया है। समय-समय पर कथागायक अपनी रुचि के अनुसार उन्हें घटाते बढ़ाते हैं। किसी गाथा का वास्तविक रूप क्या है, यह कहा नहीं जा सकता है। यदि गाथायें प्रारम्भ में ही लिपिबद्ध कर ली जातीं तो आज उनके वास्तविक स्वरूप को पहिचानने में कोई कठिनाई नहीं होती। परमाल रासो में महोबा के दो बीर आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन किया गया है। आल्हा ज्येष्ठ थे और ऊदल छोटे भाई थे। यही कारण है कि परमाल रासो आल्हा के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आल्हा' को परमाल रासो कर संबोधित किया है। तत्कालीन कवियों ने परिस्थितियों से प्रभावित होकर रासो ग्रन्थों की रचना की थी। अधिकांश रासो ग्रन्थ डिंगल (राजस्थानी) में लिखे गये थे। किन्तु परमाल रासो एक ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो बुन्देली, ब्रज (पश्चिमी हिन्दी) में लिखा गया है। यह बुन्देली का प्रारंभिक रासो ग्रन्थ है। इस ग्रंथ

को बुन्देलखंड में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। वीर छन्द में लिखा गया यह ग्रंथ आज बुन्देलखंड के जन-जन की जुबान पर है। सावन भादों के महीने में जब बादल अपनी गड़गड़ाहट से समस्त वातावरण गुंजरित कर देता है, चपला चमक-चमक कर चकचौंधया देती है, बादल रिमझिम-रिमझिम की झड़ी लगा देता है, गायक की ढोलक बज उठती है। गायक को स्वर की कड़क एवं ढोलक की खनक इतनी ओजपूर्ण होती है कि श्रोताओं के रोम-रोम फड़क उठते हैं, रग-रग में शौर्य का संचार होने लगता है। ऐसा लगता है कि अब युद्ध होने ही वाला है, तलवार और तेगा खटकने वाले है और रक्त की धारा बहने ही वाली है। ऐसा है प्रभाव आल्हा के गायन और ढोलक के वादन का।

उन दिनों भारत में सर्वत्र युद्ध का वातावरण था। भारत की अखण्डता समाप्त हो चुकी थी। अपना देश-छोटे-छोटे रजवाड़ों में विभाजित हो गया था। राजा पारस्परिक शत्रुता के कारण अपने पड़ोसी राजाओं से युद्ध किया करते थे। युद्ध का कारण शत्रुता राज्य-विस्तार या पड़ोसी राजा की पुत्री के साथ विवाह करना था। राजा श्रृंगार और वीरता की साक्षात् मूर्ति थे। वैसे उनकी वीरता का प्रदर्शन सुन्दरी के अपहरण के हेतु ही होता था। दो विरोधी रसों का विचित्र समन्वय हमें उसी युगों में दिखाई दिया है। महोबे के राजा परमाल के यहाँ आल्हा और ऊदल नाम के दो वीर निवास करते थे। इन वीरों ने अपनी तलवार के बल पर महोबा की कीर्ति-पताका फहराई थी। महोबा का नाम सुनते ही पृथ्वीराज चौहान जैसे शक्ति शाली राजा भी भयभीय होते थे। इन दोनों वीरों ने ५२ लड़ाइयों लड़ी थीं। उन ५२ लड़ाइयों का संकलन ही 'आल्हाखंड' है। इस ग्रंथ की रचना महोबा निवासी 'जगनिक' नाम के कवि ने की थी। आल्हा और ऊदल ने सुन्दर राजकुमारियों के अपहरण हेतु लड़ाइयाँ लड़ी थीं। विवाह के पूर्व युद्ध अनिवार्य था। किसी सुन्दर राजकुमारी का पता लगाते ही वे उसके पीछे पड़ जाते थे। कभी साधू बनकर, कभी जोगी बनकर और कभी तलवार चलाकर और कभी इन्द्रजाल के बल पर उसे प्राप्त कर ही लेते थे। उनके संजीव चित्र आल्ह में मिलते हैं। श्रोता सुनते सुनते अघाते नहीं हैं। बल्कि इतने अधिक तन्मय हो जाते हैं कि रात रात भर चौपाल पर जमे रहते हैं। न उन्हें खाने की खबर, न पीने की और न सोने की। ऐसा है प्रभाव आल्हा के गायन और ढोलक के वादन का।

उन दिनों कविगण अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते थे। कवि राजदरबार में बैठ कर काव्य-पाठ करते थे और कभी अवसर पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ते थे। यही कारण है कि उनके द्वारा

खींचे गये चित्र बड़े ही सजीव हैं, जिन्हें सुनकर मनुष्य प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। कवि इतना अधिक भावविभोर हो जाता है कि उसे मर्यादा का ध्यान ही नहीं रहता। यही कारण है कि कुछ चित्र सीमा का उल्लंघन कर हैं, जो अस्वाभाविक एवं हास्यापद प्रतीत होते हैं।

ग्रंथ में इन दोनों वीरों की माता का नाम मल्हना और पिता का नाम बच्छराज दस्सराज उल्लिखत है। अस्सी मन का गोला छूटना, नौ मन की साँग चलाना, खून की नदी बहाना जिसमें हाथियों के रुण्ड-मुण्ड उतराना आदि चित्र अस्वाभाविक से प्रतीत होते हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी श्रोतागण उसे बड़े ही मनोयोग से सुनते हैं। प्रत्येक लड़ाई कौतूहल पूर्ण है। इसी कारण से लोगों की रुचि बढ़ती रहती है। आल्हा कार ने प्रत्येक कथा को बड़ी ही कलात्मकता से संजोया है। लड़ाई के प्रारंभ में ईश्वर की वंदना, गणेश वंदना, देवी जी की वंदना की गई है, जो इस प्रकार है :

'सुमिरन करके श्री गणपति का, जगदम्बा के चरण मनाय।
आदि भवानी को सुमिरन कर, सुमरौ बहुरि कालिका माय॥
आदि शक्ति दुर्गा महारानी, छिन में हरो भूमि को भार।
महिषासुर को मार गिराकर, चण्ड-मुण्ड को कियो संहार॥

रासोकार ने वस्तु परिगणन शैली का अधिक प्रयोग किया है। युद्ध के समय अस्त्र-शस्त्रों के नाम, साज-सज्जा के समय वस्त्रों एवं पोशाओं के नाम, भोजन के समय व्यंजनों के नामों की परिगणना की गई है। युद्ध का सजीव दृश्य देखने योग्य है।

खट खट खट खट तेगा चटके, छपक छपक चलवैं तलवार।
चले उनब्बी औ गुजराती, ऊना चले विलायत क्वार॥
पैदल के सँग पैदल भिड़ गये, औ असवारन संग असवार।
चली सिरोही तीन पहर लौ, औ बह चली रकत की धार॥

विवाह के समय पंगत में विविध प्रकार के व्यंजन परोसे जाते थे। किन्तु भोजन करते समय यदि कुछ बात बिगड़ गई, तो तलवार चल जाती थी। बड़ी विचित्र जेवनार होती थी उन क्षत्रियों की।

"पूरी मिठाई जब परसी है, उनके आगे सब सामान।
पानी भरि दओ लोटन में, जींवन लगे बनाफर राय॥
खातन देखो सब क्षत्रिन को, क्षत्री निकल पड़े इकबार।
मार मार की धुन गुंजारी, चलानें लगीं कठिन तलवार॥

आल्हा की अपेक्षा उनका छोटा भाई ऊदल अधिक वीर और बलवान

था। ऊदल को रण बाँकुरा या रण का दूल्हा कहा जाता था। ऊदल का नाम सुनते ही शत्रुओं के छक्के छूट जाते थे। अकेले ऊदल ही हजारों वीरों को धराशायी कर देते थे। ऊदल को तलवारों के वार देखकर शत्रु-सेना में भगदड़ मच जाती थी। योद्धा अपने हथियार डाल कर और अपने प्राण बचाकर भाग जाते थे—

ऊदल मन में जोश खाय गओ, यारो सुनलो ध्यान लगाय।
लेकर तेगा टूट पड़े यों, भेड़न में भिड़िया अर्राय॥
ऊदल मेल कियो लोहा सों, दई खूनन की नदी बहाय॥
कायर छिप गये जा मुर्दन में, सूरा रहे तेगा चटकाय॥
इकलो ऊदल इकलंग लड़ता, इकलंग जोद्धा तीन हजार।
छक्के छूट गये जोधन के, भागे डार डार हथियार॥

ऊदल "बेंदुल" नाम के घोड़े पर सवारी करते थे। आल्हा हाथी पर बैठते थे। रासो में ऐसा उल्लेख है कि आल्हा अमर थे, किन्तु अन्तिम लड़ाई में ऊदल की मृत्यु हो गई थी और उसकी रानी "फुलावा" (न्याला, सती हो गई थी। आल्हा की रानी का नाम मछला रानी था और उसके पुत्र का नाम 'इंदल' था। बावन लड़ाइयों में प्रथम लड़ाई "संयोगिता हरण" की है, जिसमें पृथ्वीराज चौहान और जयचंद के युद्ध का उल्लेख है। कर्नल टाड ने 'राजस्थान के इतिहास' में इस कथानक का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है। किन्तु अधिकांश इतिहासकार 'इस कथानक को अनैतिहासिक एवं अप्रामामिक मानते हैं। इस ग्रन्थ में महोबा में स्थित कीरत सागर के किनारे चन्द्रावली के मुंबरियों के कारण घमासान युद्ध का वर्णन है। चन्द्रावली महोबे के राजा परमाल की पुत्री थी। राजा परमाल के दरबार में ही आल्हा और ऊदल नाम के ये दो वीर विद्यमान थे। इसी कारण से आल्हा का दूसरा नाम "परमाल रासो" भी है। महोबे में हम आज भी कीरत सागर के दर्शन कर सकते हैं। ये दोनों वीर देवीजी के परम भक्त थे। युद्ध के पहले आदि शक्ति की उपासना करते थे। उनकी कृपा से हर युद्ध में विजय प्राप्त होती थी। आल्हा ग्रन्थ में 'मनिया देव' की पूजा का अनेक स्थलों पर उल्लेख है। 'मनियादेव' का मंदिर आज भी कीरत सागर के समीप बना हुआ है। राजा परमाल के दुर्ग के भग्नावशेष आल्हा-ऊदल के महलों के खण्डहर हमें महोबे में आज भी देखने को मिल सकते हैं। (आल्हा में आल्हा ऊदल के अतिरिक्त मनखान सुलखान सिरसा के राजा, माहिल उनके मामा उरई के राजा और ब्रह्मा परमाल के पुत्र का भी उल्लेख है। अधिकांश

विद्वान इस ग्रन्थ को कपोल कल्पित मानते हैं आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं को अनैतिहासिक एवं अप्रामाणिक सिद्ध किया है। इतिहास में इन घटनाओं का कोई उल्लेख नहीं है, फिर भी इन घटनाओं एवं स्थलों को पूर्ण असत्य एवं अप्रामाणिक नहीं कह जा सकता है। आज भी हम महोबा नगर में उन समस्त स्थलों को देख सकते हैं। अस्तु इस ग्रन्थ को केवल कपोल कल्पित ही कहना मेरे विचार से ठीक नहीं है। भले ही ग्रन्थ में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, किन्तु असत्य नहीं अतिशयोक्ति है, जो कवियों का स्वाभाविक गुण है।

ग्रन्थ का रचना काल एवं ग्रन्थ की भाषा के सम्बन्ध में भी मतभेद है। कुछ विद्वान इस ग्रन्थ को ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का मानते हैं और कुछ विद्वान सोलहवीं शताब्दी का। इसी तरह भाषा के सम्बन्ध में मतभेद रहा है। किसी ने इस ग्रन्थ की भाषा को डिंगल कहा तो किसी ने पिंगल किन्तु यह बात निश्चित है कि इस ग्रन्थ की भाषा पश्चिमी हिन्दी है, जिसमें बुन्देली ब्रज और खड़ी बोली का मिश्रण है। वैसे आल्हा ब्रज राजस्थान, मालवा और बुन्देलखण्ड में प्राप्त होता है, किन्तु हर क्षेत्र के आल्हा में उस जनपद की भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। हमारे बुन्देलखन्ड के आल्हा में बुन्देली का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। उसमें बुन्देली संस्कृति का स्वरूप दिखाई देता है। सच पूछा जाय तो आल्हा हमारे बुन्देलखन्ड का ही है। बुन्देलखन्ड के वीरों की अमर गाथा है। अस्तु इसे किसी दूसरे क्षेत्र का कहना न्यायसंगत नहीं है। इसकी लोकध्वनि एवं कथानक इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि दूसरे जनपदों के गायकों ने इसकी नकल कर ली और इसे अपनी भाषा का बाना पहना दिया, किन्तु इसका मूल उद्गम बुन्देलखण्ड ही है।

साक्षात्कार प्रसिद्ध अल्हैत जयसिंह से

• जितेन्द्रसिंह

"एक का मारें दुई मर जाय। तीसर हाय खाय गिर जाय।" यानी ऐसे रणधीर-बीर अपनी भारत भूमि में रहे है कि रणभूमि में एक शत्रु पर वार किया तो दूसरा शत्रु भी उसकी चपेट में आकर काल कवलित हो गया। तीसरा कोई बुजदिल शत्रु या सूरमा देख हाय खाकर स्वयमेव धराशायी हो गया। ऐसे अनेक वर्णन जो वीर रस से ओतप्रोत है हमने आल्हा गायकों से सुने है। इस कारण कुछ स्वाभाविक जिज्ञासाएं जागृत हुई, इन वीर-रस के गायकों और इनकी गायकी के बारे में जानने की। इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिए हम हमीरपुर जिले के ग्राम बिदोखर निवासी ख्यातिनाम आल्हा गायक श्रीयुत जयसिंह जी से मिले। गेहुँआ वर्ण, इकहरे बदन और उच्चकद के, मिल-नुसार, सरल स्वभाव तथा मृदुभाषी श्री जयसिंह से हमारी बातचीत कुछ इस प्रकार हुई—

—आपने आल्हा गायन कब से प्रारम्भ किया ?

मैंने आल्हा-गायन सन् १९६४ से प्रारम्भ किया था, तबसे लगभग १८ वर्ष हो गए है, मैं बराबर आल्हा गाता रहा हूँ।

—आपके गुरु कौन हैं और आपकी गुरु-परम्परा क्या है ?

मेरे गुरु स्वर्गीय श्री लक्खूसिंह नम्बरदार थे, जो ग्राम बिदोखर, जिला हमीरपुर के निवासी थे। वे इस विषय के पूर्ण मर्मज्ञ थे। उनके गुरू श्री कालीसिंह उर्फ 'कलियाँ' ग्राम उमरी, जिला हमीरपुर के निवासी थे। ये प्रचलित आल्हा की ध्वनि के जन्मदाता थे, जो बुन्देलखण्ड में सभी आल्हा-गायक आज भी उसी ध्वनि में गा रहे हैं। श्री कालीसिंह के गुरू फत्तू कसाई थे, जो मूसानगर जिला कानपुर के निवासी थे।

—आप आल्हा मौखिक परम्परा से गाते हैं या किसी पुस्तक/प्रति के माध्यम से गायन करते हैं ? यदि ऐसा है, तो उस पुस्तक/प्रति रचनाकार का नाम, रचना-समय और उससे सम्बंधित, यदि कोई विशेष बात हो, तो बताएं ?

आल्हा गायन मैंने मौखिक भी ग्रहण किया और पृथ्वीराज रासो व 'वीर विलास' एवं भविष्य पुराण के बयालिसवें स्कन्ध से पूर्ण स्मरण किया, जो अति प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। 'पृथ्वीराज रासो' चन्दवरदाई कृत है,

यह डिंगल भाषा का काव्य है। 'चन्द' दिल्लीपति सम्राट महाराज पृथ्वीराज के समकालीन और उनके दरबारी कवि, मुख्यमन्त्री तथा युद्धकला में प्रवीण सामन्त थे। 'पृथ्वीराज रासो' का रचनाकाल, वीर गाथा काल है, जो सम्वत् १०५० से १३७५ तक माना जाता है। 'वीर विलास' कवि 'ज्ञानी' कृत है, जो सम्वत् १७७० में लिखा गया। 'ज्ञानी' जलालपुर जिला हमीरपुर के निवासी और जाति के ब्राह्मण थे। ये जोधापुर महाराज के दरबारी कवि थे। 'भविष्य पुराण' वेद-व्यास कृत है। विशेष बात यह है कि आजकल आल्हा-गायक जो आल्हा गाते हैं, वह बहुत कुछ इन ऐतिहासिक कृतियों से भिन्न है, जबकि ये प्राचीन कृतियाँ वास्तविकता लिए ऐतिहासिक स्तम्भ हैं।

—जयसिंह जी आपकी गायकी में अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। कृपया अपनी गायकी के विशेष तथ्य व तत्व बताएँ।

मेरी गायकी के विशेष तथ्य यह है कि नैतिकता, सामाजिकता, राष्ट्रीयता और धार्मिकता का समन्वय इसमें रहता है, जिससे जाति-धर्म और समाज तथा राष्ट्र के उत्थान हेतु वीरोचित प्रेरणा मिलती है। जहाँ तक तत्व की बात है, तो उसके बारे में तो जितेन्द्र भाई मैं यही कह सकता हूँ कि इन प्राचीन कृतियों से सम्बन्धित ऐतिहासिक शैली में गाता हूँ, जो पारम्परिक ध्वनि से समन्वित है। अन्य आल्हा-गायकों से इतिहास, छन्द (छप्पय, दोहा, सोरठा, रोला, कुन्डलिया आदि के साथ सवैया) का प्रयोग बहुत कुछ भिन्नता व यथार्थता लिए है। मेरे गायन में व्यर्थ की बातोंकी भरमार नहीं है। जिस रस को लेकर गाता हूँ, उसी रस की पूर्ण छाप समाज पर पड़ती है। अपने बुन्देलखण्ड के वीरों का उपदेश, उद्देश्य, निर्देश, संदेश व संकेत कहने में, गाने में बहुत उत्साहित होता हूँ ताकि समाज प्राचीन वीरता, शूरता व आदर्शों में झाँकता और उन्हें आँकता रहे।

—आपने किन-किन क्षेत्रों में और कहाँ पर गायन किया है ? गायन के समय यदि कोई विशेष घटना घटित हुई हो, तो बताएँ।

मेरी गायकी प्रस्तुति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसमें हमीरपुर, बाँदा, जालौन, झांसी, ललितपुर, फतेहपुर, कानपुर, उन्नाव, रायबरेली, इटावा, मथुरा, ग्वालियर, छतरपुर, टीकमगढ़, पन्ना, इलाहाबाद, कटनी, (जबलपुर) रीवा एवं सतना आदि जिले शामिल है। बुन्देलखण्ड के सभी जिलो के लगभग ९९% ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक उत्सव, महोत्सव व राष्ट्रीय पर्वों में, धार्मिक व राजनीतिक संस्थाओं व सभाओं के माध्यम से गाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके प्रमाण-पत्र मेरे पास हैं।

—जयसिंह जी, जब आप आल्हा गाते हैं, तो मन का भीतर कैसा अनुभव

करते हैं ? श्रोताओं पर हुई प्रतिक्रिया कैसे पहचानते हैं ।

ऐसा है कि जब मैं आल्हा गाता हूँ, तो मेरा समस्त अन्तस्थल वीरता से भर जाता है । शरीर रोमाञ्चित हो उठता है । प्राचीन आदर्श उभर कर सामने आ जाते हैं । जिस स्थल का वर्णन करता हूँ व जिस पात्र का चरित्र-चित्रण करता हूँ, तो उसकी कल्पनाकृति मस्तिष्क पर साकार सी प्रतीत होती है । मेरी गायकी के प्रभाव से जब श्रोता-समाज में वीरता की उमंगे उठने लगती हैं, तो अनुभव करता हूँ कि श्रोताओं के हृदय में वीरत्व की छाप है ।

—जैसा कि मैंने आपसे पूर्व में पूछा था कि गायन के समय कोई विशेष घटना घटी है, तो बताएँ ।

जितेन्द्र, घटनाएँ तो कई घटती रहती है । हां, अक्सर मेरी गायकी के कारुणिक प्रसंग सुनकर स्रोताओं की आँखों में अश्रुधारा प्रवाहित हो उठती है, तो मैं अनुभव करता हूँ कि समाज करुणा व दया से द्रवीभूत हो उठा है ।

—आल्हा का कौन सा प्रसंग गाने में आपको सबसे अच्छा लगता है ?

बेतवा नदी का भयंकर संग्राम, जो आल्हा व पृथ्वीराज चौहान के मध्य हुआ । इस संग्राम में पृथ्वीराज चौहान के प्रधान सेनापति—कन्हराव चौहान के एक ही वार से ऊदल का अश्व आहत होकर मैदान से पलायन कर गया, तत्पश्चात आल्हा ने जिस बल, शौर्य व पराक्रम से गुरू गोरखनाथ के दिए हुये दिव्यास्त्रों का प्रयोग करके पृथ्वी राज को अचेत कर दिया । इसका वर्णन चन्द्र व ज्ञानी कवि ने क्रमशः 'पृथ्वीराज रासो' व 'वीर-विलास' में किया है, इनकी एक एक बानगी प्रस्तुत कर रहा हूँ—

इक्क बाण में आल्ह के, छुट्टयो ओज अगार ।
भुजा फहि चौहान की, भूतल परयो आपार ॥
'पृथ्वीराज रासो'

शेल्ह बाण आल्हा हन्यो, छति लग्गी अधिकाय ।
बरदायी के पास जा, गिरयो भूप महराय ॥
'वीर विलास'

जितेन्द्र भाई यही वीरोचित प्रसंग मुझे सबसे अच्छा लगता है ।

जयसिंह जी आल्हा की कुछ विशेषताओं और उससे सम्बन्धित कुछ बातें हमें और बताने का कष्ट करें आप । 'आल्हा' जिसके नाम पर ही 'आल्हा गायन की परम्परा प्रचलित हुई स्वयं विशेषता का प्रतीक है । यद्यपि कुछ आल्हा गायक काल्पनिक वर्णन कर आल्हा का चरित्र-चित्रण करके उसे निन्दा का पात्र बनाते हैं, जो मिथ्या व काल्पनिक है । आल्हा स्वयं देश, धर्म व जाति पर बलिदान की भावना से भरा था । अपनी आन, बान, शान पर

प्राणों की बाजी लगा कर एक बार तो स्वयं पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के आमन्त्रण पर मुसलमानों को पराजित करके देश की रक्षा की थी, जिसका वर्णन कवि चन्द्र ने किया है—

यवन जाल इमि उच्चरहिं, वीर मकनपुर मिहि ।
दिल्ली औ कनवज शहर, नगर महोबा मिट्टि ॥
जीत भई चन्देल की, हारे सर्व पठान ।
रैयत सब चन्देल की, बसी आपने जान ॥

बल, शौर्य, पराक्रम के विषय में पृथ्वीराज चौहान के मंत्री 'कैमास' ने आल्हा से युद्ध न करने की सलाह स्वयं पृथ्वीराज चौहान को वैरागढ़ युद्ध में दी थी—

तब मंत्री कैमास कह, सुनहु कर नृपराय ।
राजनीत मत आल्ह सों दीजै समर बचाय ॥

स्वयं चन्द्र बरदायी भी कहते हैं—

साहवधान चौहान हुव, कहत चन्द्र वरदाय ।
अब आवत अल्हन सुभट, विरलोवीर खटाय ॥

पृथ्वीराज के उत्तर प्रति उत्तर करने पर चन्द्र' ने पुनः कहा कि तुम आल्हा के समकक्ष योद्धा नहीं हो क्योंकि—

छप्पय—एकादश नृप आल्ह दरश गोरख का किन्निव ।
द्वादश वर्ष उदण्ड पकरि नृप केहरि लिन्निव ॥
त्रयोदश काबुल जित्त ख्याल खग्गन को मण्डयो ।
चौदह वर्ष कुमार जीत अरिगन सब छण्ड्यो ॥
दश सप्त वर्ष का जब भयो, स्वामि धर्म चित लाइयो ।
दशराज सुवन का भूमितल कवि गोविंद यश गाइयो ॥

दो० बनाफर चन्देल गृह, बलाध्यक्ष बलवान ।
पुरावृत्त तिनके सुनहु, कानमण्ड चौहान ॥
साठ लक्ख काबुल यवन, जुरे भीम बलवान ।
इक्क मत्त कीन्हे सबै, मिट्टन का हिन्दुवान ॥
सत्त वत्त भूपत्ति सुन, आल्ह बिक्रमी आय ।
उम्मर चौहान वर्ष की, काबुल लई छुड़ाय ॥
मोहन सोपन उपलब्धि, अग्निवान पौबान ।
अमर कियो अवनी विहँसि, गोरख कृपा निधान ॥
अष्टादश की उमर में, हरे अग्नि के गर्व ।
स्वामि धर्म चित आल्ह धरि, जीत लियो गन्धर्व ॥

इकक मूरछा होत है, जिहि महित अवगाह।
गोरख का बरदान है, द्वितीय मूरछा नाहि ॥
अल्हन का बरदान है, यह जानत सब कोय।
जबै मूरछा उठत हो, सहसगुना बल होय ॥
परयो मूरछा जान भट, जो घल्लै तन घाय।
गोरख का बरदान है, सहसन देय खपाय ॥
ताते सब सामन्त हो, अन्त जाय न कोय।
सहवन खम्म खराइ है, कहत चन्द कवि सोय ॥
पृथ्वीपति से सुचित हुं, कह्यो चन्द कवि मंत्र।
आल्हा से नहि चल सकै, जंत्र-मंत्र औ तंत्र ॥
छप्पय : कहै चन्द कर जोर, सुनहु चौहान भूपवर।
चार मवासी टोर पकरि, लायो चरनन तर ॥
मन्डूमन बंगाल वीर, विरसिंह सु गोजर।
धरपहि रैमन जीत कियो, हुजूर सो हाजिर ॥
यह सुबस जाय कछुमन कह्यो, सरय जहाँ तहँ जित हुव।
तुव दैव देस सब छूट तुव, सरन आल्ह नहि वीर तुव ॥

यह वर्णन कवि चन्द ने अपने ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में किया है।

श्री जयसिंह जी से हुई इस बातचीत के माध्यम से प्राप्त जानकारी के लिए हमने उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और उन्हें धन्यवाद देने के उपरान्त हमने उनसे विदा ली।

आल्हाखण्ड की खोज : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त से बातचीत

○ वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

संध्या के उस सुहावने समय में जब मैं पूर्व निर्धारित तिथि और समय पर उनके घर पहुँचा, तो अपनी लम्बी-चौड़ी बैठक में एक ओर बिछे तखत पर फैले कागज-पत्रों और बड़े-बड़े संदर्भ-ग्रंथों के बीच बैठे डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त अपनी किसी नई रचना के सृजन में अति व्यस्त दिखाई पड़े। बुन्देलखण्ड का साहित्येतिहास (एक हजार पृष्ठीय शोध प्रबन्ध) और आल्हा उपन्यास का यह सर्जक उस समय तखत पर सफेद खद्दर की धोती और बनियान शरीर पर धारण किए उकड़ूँ बैठा अपनी रचनात्मक सृजन-प्रक्रिया में लगा हुआ था। प्रतीक्षा तो वो मेरी कर ही रहे थे। पास पड़े सोफे की एक कुर्सी पर मुझे बैठने का संकेत कर उन्होंने अपना अपूर्ण वाक्य पूरा किया और आ बैठे मेरे ही सामने—

—कहिए शर्मा जी, आ गये न आज मेरी बखिया उधेड़ने।

उनका वाक्य उछला मेरी ओर।

— अरे वाह गुप्त जी, क्या बात कही है आपने? क्या लेखक से सृजन-विषयक प्रश्न पूछ लेना तथा अपनी शंका समाधान कर लेना लेखक की बखिया उधेड़ना कहा जायगा? लगता है, आप तो पहले मेरी ही बखिया उधेड़ कर रख दे रहे हैं, जिससे कहीं ऐसा न हो कि मेरे मस्तिष्क में उभरे प्रश्न हवा में ही उड़कर गायब हो जायें।

—नहीं-नहीं, ऐसा कुछ नहीं। चलिए शुरू हो जाइये न।

—बात दरअसल यह है डाक्टर साहब कि पिछले दिनों प्रकाशित आपके आल्हा उपन्यास, आल्हा से संबन्धित लेख, हरदौल, राय प्रवीन, ईसुरी आदि विषयक विविध विधाओं में लिखी गई आपकी रचनाओं को पढ़कर मेरे मन में अनेक ऐसे प्रश्न उठते रहे हैं, जिनका समाधान आपके सिवा भला और कौन कर सकता है। अभी फिलहाल मैं आल्हा विषयक प्रश्नों पर ही सीमित रहूँगा।

—बिल्कुल ठीक। अधिक औपचारिकता की तो अब कोई बात है नहीं। पूछिए आप, हाजिर हूँ मैं यहाँ आपको उत्तर देने के लिए।

—आल्हा उपन्यास के लेखन और प्रकाशन के बाद से आप निरन्तर आल्हा के संबंध में कुछ न कुछ खोज करते और लिखते ही रहे हैं। सो क्यों?

आल्हखण्ड आदिकाल की एक अनोखी कृति है, जिसके नायक आल्हा के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ने ही बचपन से मुझे प्रभावित किया था और उससे भी अधिक आल्हखण्ड के 'रचयिता' सुकवि जगनिक ने। मैंने इन दोनों विभूतियों के सम्बन्ध में काफी अध्ययन किया, तब सन् १९६२ में आल्हा' उपन्यास लिखकर प्रकाशित कराया। जगनिक जैसा रचनाकार तो दूसरा मिलना मुश्किल है। चन्देल-नरेश परमार्दिदेव के आश्रम में रहकर भी जिस कवि ने अपने आश्रयदाता के बजाय एक शूरवीर की सच्ची गाथा गई हो, वह लोकभावों का सच्चा कवि जगनिक ही कर सकता था। यही कारण है कि आल्हखण्ड आज भी उतना ही लोकप्रिय है, जितना पहले था। तुलसी के मानव' के बारे में आज विवाद उठ रहे हैं। अब आप ही बताएँ कि ऐसी कृति, उसके कृतिकार तथा उसके नायक के बारे में खोज जरूरी है या नहीं?

—आप ठीक कहते हैं, लेकिन दूसरे मूल रूप का पता कैसे चलेगा? प्रकाशित 'आल्हा' तो ज्यादातर कपोल-कल्पित ही लगते हैं, फिर शोध कार्य कैसे होगा? आप इस दिशा में कितना आगे बढ़े हैं।

—बहुत कठिन कार्य है शर्मा जी, लेकिन 'जिन खोजा तिन पाइयों' के भरोसे सब चल रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि जैसे विद्वानों ने 'परमाल रासो' को ही 'आल्हखण्ड' मान लिया, कुछ विद्वानों ने तो महोबा समय को ही प्रश्रय दिया। बहरहाल सब विवादग्रस्त रहा। आप ही अन्दाज करें कि क्या ऐसी कृतियाँ लोक मानस में जीवित रह सकती है? क्या इनका कोई भी छोटे से छोटा अंश आज भी लोक मानस में है? इस कारण मुझे प्रेरणा सी हुई, शायद महोबा की माटी का ऋण यह सब करा रहा है मुझसे। सारे पाठों, वर्णनाओं (वरजन्स) को एकत्र कर रहा हूँ। मूल पाठ की खोज में लगा हूँ।

—वास्तव में बहुत बड़ा कार्य उठाया है आपने। भगवान आपको वांछित सफलता प्रदान करे। अब आप जरा मुझे यह बतायें कि आपने अपने उपन्यास में आल्हा को राष्ट्र-पुरुष किस आधार पर मान लिया है, जबकि सभी लोग उन्हें क्षेत्रीय विभूति मानते हैं?

—उसके ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं। मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता ने राजसंघ का उल्लेख किया है। अजमेर के महाराज सोमेश्वर के आवाहन पर आल्ह ने तुर्कों के विरुद्ध अपनी वीरता का परिचय दिया था। इतिहासकार

वि० वि० वैद्य ने चौहान-चन्देल युद्ध को राष्ट्रीय विनाश का कारण माना है। टाड ने आल्हा ऊदल की माँ देवल दे को श्रेष्ठ और उदार देश भक्ति का प्रतीक कहा है। क्या ये साक्ष्य आल्हा को राष्ट्र पुरुष तथा जगनिक के आल्हखण्ड के कथानक को राष्ट्रीय महत्व को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है?

—अब कृपया यह बतायें कि आपको आल्हा उपन्यास लेखन की प्रेरणा कहाँ से, कैसे मिली और सामग्री के स्रोत क्या थे?

—मेरा बचपन और यौवन महोबा में व्यतीत हुआ है। 'बचपन से ही आल्हा की गिल्ली, बैठक और ऊदल के बेंदुला की टाप देखता रहा हूँ। कुतूहल के अंकुर उगे, बढ़े और मुझे लिखने के लिए प्रेरित करते रहे। विद्यार्थी जीवन में राष्ट्र कवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'सिद्धराज' पढ़ी, जिसमें चन्देल नरेश मदन वर्मन और सिद्धराज जयसिंह की ऐतिहासिक घटना का वर्णन था। इसी को आधार बनाकर मैंने 'वसंतोत्सव' नामक कहानी भी लिखी थी। पढ़ाई के बाद अध्ययन कार्य से मऊरानीपुर रहा, उसी समय 'ईसुरी-परिषद' का सचिव बना। भाग्यवश प्रथम अखिल भारतीय लोक संस्कृति-सम्मेलन में प्रतिनिधि बनकर इलाहाबाद जाना पड़ा। वहाँ प्रभाकर माचवे और अन्य कई विद्वानों ने एक ही प्रश्न कई बार दुहराया कि आपके जनपद बुन्देल-खण्ड के बारे में क्या-क्या लिखा गया है? उस लज्जाजनक स्थिति का प्रभाव आज भी वैसा ही ताजा है। उसने ही मुझे लिखने की बार-बार प्रेरणा दी है।

सामग्री के स्रोत अनेक हैं, जिनका संकेत मैंने 'आल्हा' की भूमिका तथा अन्य शोध लेखों में किया है। फिर भी आपको संक्षेप में उन स्रोतों की जानकारी दे दूँ। उन्हें छः वर्गों में रखा जा सकता है—

१. अनेक इतिहास-ग्रंथ और तत्कालीन शिलालेख, (२) आल्हखन्ड की विभिन्न वर्णनायें, (३) आल्हखण्ड की विषयवस्तु पर रचे गये अन्य ग्रंथ (४) आल्हैतों के आल्हा, (५) लोकमुख में जीवित 'आल्हा' के पाठ, (६) आल्हाकालीन ग्रंथ। इन सभी वर्गों के ग्रंथ और उदाहरण देने से एक पोथन्ना बन सकता है, किन्तु इन्हें प्राप्त करने में प्रायः कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।

—डाक्टर साहब, अब कृपया बताइये कि प्राय: कहा जाता है कि आल्हा ने 'जाकी-बिटिया सुन्दर देखी, ता-को जाय धरी तरवार' को चरितार्थ करते हुए ज्ययादातर लड़ाइयाँ अपने बन्धु-बांधवों या आश्रयदाता के पुत्रों-परिजनों के विवाह कराने हेतु ही लड़ीं। आपका अपना मत क्या है इस बारे में?

—यह दृष्टिकोण ही गलत है। वैसे तो मध्ययुग में राजनैतिक दृष्टि से विजय के साथ विवाह करना संधि का एक आवश्यक अङ्ग ही बन गया था, जिसका उद्देश्य शायद सम्बंधों को सुदृढ़ बनाना रहा होगा इसीलिए आल्हखण्ड में विवाह को भी महत्वपूर्ण समझा गया है और उस काल की इस विवाह-प्रवृत्ति को सजीवता से चित्रित किया भी गया है, पर जगनिक के आल्हखण्ड का संदेश ही दूसरा है, जिसका संकेत मैं कर ही चुका हूँ। यह आल्हखण्ड ऊर्जा का महाकाव्य है, जो शौर्य के आदर्श खड़े करने में सफल रहा है।

—क्या आल्हखण्ड के कथानक में ऐसी सांस्कृतिक दृष्टि मिलती है, जैसी आपने अपने उपन्यास 'आल्हा' में अंकित की है? आपने देवर ऊदल से भाभी सोना के चरण-स्पर्श कराये हैं, क्या यह तत्कालीन संस्कृति का अङ्ग था?

—आल्हखण्ड का कथानक युद्धपरक घटनाओं से भरा है, फिर भी उसमें अन्य प्रासंगिक कथाएँ भी हैं। जैसे ऊदल के जन्म पर रानी माल्हनदे का नृत्य और बधावा, जगनिक का आल्हा-ऊदल को मनाने के लिए राजा की पाग राज माता देवल के चरणों पर रखना आदि। ये सब तत्कालीन बुन्देली संस्कृति के अङ्ग थे ही। लाखा पातुर एक लाख सिक्कों पर नृत्य करने वाली नर्तकी थी। महोबा और कालिंजर के मन्दिर चन्देल नरेश परमार्दिदेव के काल में बने थे। ये उस समय की संस्कृति के कुछ उदाहरण हैं, जो बुन्देली संस्कृति के स्वर्ण युग का चित्र अंकित करते हैं। साथ ही पारस्परिक कलह और युद्ध बदला लेने की भावना आदि उस काल की भारतीय मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब उभारते है। इसी संस्कृति को 'आल्हा' उपन्यास में चित्रित किया गया है। जहाँ तक ऊदल का भाभी के चरण-स्पर्श करने का प्रश्न है, उस समय की संस्कृति में वह स्वीकृत रहा होगा। मुगलों और मुसलमानों के आने के बाद कुछ परिवर्तन हुए थे, फिर पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क से कुछ हुआ तथा पुनर्जागरण काल में एक परिवर्तन फिर आया। देवर-भाभी के सम्बन्धों में कुछ कहना सरल नहीं है। उदाहरण के लिए हरदौल अपनी भाभी को माता ही मानते थे, चरण-स्पर्श भी करते रहे होंगे।

—आल्हखण्ड में गुरु गोरखनाथ का प्रसंग भी है। युद्ध की दौरान ही, ऊदल की मृत्यु पर आल्हा उनके शिष्य होकर कदलीबन चले गये थे। क्या यह घटना सत्य और ऐतिहासिक है?

वास्तव में यह प्रसंग प्रतीकात्मक है, जो प्रयुक्त मध्ययुग के प्रबंधों की कथानक रूढ़ि के रूप में हुआ है। उसका अर्थ है—आल्हा की युद्ध से घृणा संसार से विरक्ति। अतएव उसमें ऐतिहासिकता या सत्यता का सवाल ही

नहीं है। इन कथानक रूढ़ियों को जाने बिना कभी-कभी आल्हखण्ड की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया जाता है, जो उचित नहीं है।

इस उपन्यास (आल्हा) के अलावा आपने आल्हखण्ड के विषय में जो लिखा है, उसमें आपका क्या खोजने का प्रयत्न किया है?

उपन्यास के बाद मैंने कई शोध निबंध लिखे, जो मध्यप्रदेश संदेश, कादम्बिनी, परिषद पत्रिका जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए। एक लेख में आल्हा को राष्ट्रनायक भी सिद्ध किया गया है, दूसरों में उसकी ऐतिहासिकता किंवदंतियों, रचनाकार आदि पर प्रकाश डाला गया है। आल्हखण्ड पर लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों की समीक्षा भी लिखी है, पर वह सब प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

अब सिर्फ अन्तिम प्रश्न, आल्हा आज के इस बौद्धिक युग में भी लोकप्रिय क्यों है, जब कि हमारे जीवन-मूल्यों में काफी परिवर्तन आ गया है?

इस बौद्धिक या वैज्ञानिक युग में हमारी दृष्टि तो बदली, पर साथ ही हम पर निराशा और अनास्था के बादल भी घिर आये हैं। उत्साह और ओज समाप्त प्राय से हो गए। इस ठहराव या कल्चरल लैन लैग तोड़ने के लिए ऊर्जा और ओज की जरूरत हैं, जिसकी पूर्ति 'आल्हा' ने की है। उसमें अजीब जुझारू चेतना-शक्ति है। इसलिए आल्हखण्ड एक शाश्वत कृति बन गयी है। जब तक जीवन में संघर्ष का महत्व है, तब तक आल्हखण्ड जीवित रहेगा। एक विशेषता और यह है कि आल्हखण्ड लोक से जुड़ा हुआ महाकाव्य है। दूसरे उसमें गजब की प्रेषणीयता भी है। इसलिए आल्हखण्ड की लोकप्रियता पर आँच आना नामुमकिन है।

बातचीत की सहज-सहृदय समाप्ति सर औपचारिक शिष्टाचार के बाद डा० गुप्त ने मुझे बिदा किया।

दतिया की आल्हा-गायकी

—महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

उत्तर भारतीय संगीत की कुछ 'गायकियों' अथवा 'गान-शैलियों' का नाम दतिया नगर के साथ जुड़ा हुआ है। उदाहरणार्थ—दतिया की लेद, दतिया की मल्हार, दतिया का आल्हा इत्यादि। दतिया के साथ इन गान-शैलियों का नाम जुड़ने का कारण यह नहीं है कि ये सभी गान-शैलियां मात्र दतिया में ही जन्मी हैं; बल्कि यह है कि दतिया ने इनका लालन-पालन करके इन्हें भली-भांति पल्लवित-पुष्पित भी किया है। प्रस्तुत निबन्ध में मात्र दतिया की आल्हा गायकी पर ही विचार किया जा रहा है।

'आल्हा' शब्द का अर्थ बुन्देलखण्डी जनमानस के लिए लोकविदितहै, अतः यह बताना अनावश्यक है कि 'आल्हा' कौन थे और 'आल्हा-गायकी' क्या बला है। सभी जानते हैं कि बुन्देलखण्डी ग्रामीण, प्रायः आल्हा गा-गा कर ही अपनी बरसातें काटते हैं। ग्रामीण पढ़े लिखे हैं, वे आल्हा' की छपी हुई पुस्तकों से, और अपढ़ जन प्रायः लोक प्रचलित आल्हा की साखियो के सहारे, अपना आल्हा गाने का शौक पूरा करते हैं। साथ में, ढोलक-मंजीरा इनके साथ बजता रहता है। उनके इस प्रकार के 'गान' में सिर्फ 'वीर रस' की प्रधानता रहती है और संगीत की दृष्टि से वैविध्य या वैभिन्य का पूर्ण अभाव रहता है। यहसर्वत्र प्रचलित गान-शैली है।

दतिया की आल्हा-गायकी इससे भिन्न है। यहां के 'आल्हागान' के लिए सारंगी, खड़ताल और मृदंग—ये तीन वाद्य-यन्त्र आवश्यक हैं। सारंगी के अभाव में हारमोनियम भी चल जाता है (वर्तमान में प्रायः हारमोनियम ही उपयोग में आ रहा है)।

दतिया में, पुस्तक देख-देख कर आल्हागाना अच्छा नहीं माना जाता। इसलिए गायक 'आल्हा काव्य' को प्रायः कण्ठस्थ ही रखता है। इसी प्रकार, फुटपाथों पर बिकने वाली पुस्तकों में प्रकाशित 'आल्हा' को भी, गाने-वाले प्रायः कम ही उपयोग में लाते हैं। वे प्रायः उस आल्हा-काव्य को कण्ठस्थ करते हैं, जो या तो लोक में 'साखियों, सैरों' के रूप में प्रचलित है, अथवा

फिर जिसे वे आनुवंशिक या परम्परागत रूप में सुनते चले आ रहे हैं। लेखक को ऐसा ज्ञात हुआ है कि परम्परागत रूप में प्राप्त यह 'आल्हा-काव्य', उन्नीसवीं सदी के सुप्रसिद्ध कवि नवलसिंह प्रधान की प्रतिलिपि से प्रारम्भ हुआ था और यह प्रति दतिया के राजकीय पुस्तकागार (कुतबखाने) में सुरक्षित जगनिक रायसे (परमाल-रायसे) की हस्तलिखित प्रतिलिपि थी। ऐसी अनेक प्रतिलिपियां दतिया नगर के कुछ परिवारों में थीं; सम्भवतः आज भी होंगीं, लेकिन उनमें से अधिकतर या तो रद्दी खरीदने वालों और या फिर पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों के 'व्यापारियों' के हाथों मेंसौंपी जा चुकी हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रमाण के लिए किसी हस्तलिखित प्रति को प्रस्तुत कर सकना कठिन है। राजकीय पुस्तकागार के बस्ते भी स्थानीय डिग्री कालेज की लायब्रेरी को सौंपे जा चुके हैं। अतः मात्र कालेज की लायब्रेरी में ही उक्त प्रति के मिलने की सम्भावना की जा सकती है। बहरहाल, वर्तमान में तो केवल दतिया के सुप्रसिद्ध व बयो वृद्ध आल्हागायक गंगोले' को ही उपरोक्त प्रति का एकमात्र पर्यायवाची माना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने नवलसिंह प्रधान की प्रतिलिपि से ही आल्हा कण्ठस्थ किया था। उन्हें सम्पूर्ण आल्ह-खण्ड तो कण्ठस्थ है ही चन्द्रबरदायी के अधिकांश छन्द भी पर्याप्त मात्रा में मुखाग्र हैं। इसके विषय में हम बाद में चर्चा करेंगे।

दतिया, मलखान की कार्यभूमि रही है। दतिया को पश्चिमी सीमा पर सिंध नदी बहती है। इस नदी से जहां 'महुअर' (प्राचीन मधुमती नदी) का संगम होता है, वहां धूमेश्वर महादेव का विशाल तथा प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर का पुनर्निमाण महाराज विरसंगदेव (वीरसिंह देव प्रथम) ने करवाया था। इसी मन्दिर के निकट नदी की 'ढीह' पर एक विशाल चबूतरा है जिसे 'मलखान की चौकी' कहते हैं। वहां एक बड़ी 'सांग' भी गड़ी हुई है। इस चबूतरे के निकट, मन्दिर के एक साधु को खुदाई में लोहे की एक 'लगाम' प्राप्त हुई थी। वह लगाम लगभग तीस किलो वजन की बतायी जाती है। अतः यह लोकश्रुति कि 'आल्हा' के समय में लोग दीर्घकाय हुआ करते थे, कुछ कुछ सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि तीस किलो भार की लोहे की लगाम वर्तमान युग के घोड़े तो कदापि सहन नहीं कर सकते, इसके लिए घोड़े का विशालकाय और बलवान् होना आवश्यक है। और इतने विशाल घोड़े पर आज के छोटे-नाटे मनुष्य तो सवारी बिलकुल ही नहीं कर सकते। अस्तु, इस उल्लेख का प्रयोजन सिर्फ यह बताना था कि दतिया की भूमि का आल्हा और उनके परिवार से निकट का सम्बन्ध रहा है।

दतिया में आल्हा-गान का प्रारम्भ 'साखी' से होता है। इसके लिए 'पीलू-राग' से मिलते-जुलते 'मल्हार' नाम लोकधुन के स्वर निश्चित हैं। इन स्वरों के आधार पर प्रसंगानुकूल साखी गायी जाती है। 'लय' प्राय मध्य-बिलम्बित रहती है, और मृदंग पर ठेका बजाया जाता है, वह—यद्यपि कोई शास्त्रीय ताल नहीं है तथापि—लगभग अठारह मात्रा काल में पूरा होता है। तत्पश्चात् कहरवे की मध्यलय में, तत्सम्बन्धित दो तीन अन्यसाखियाँ या दोहे कह कर साखी का तोड़' किया जाता है जिसकी एक विशिष्ट धुन तो है ही, उसके साथ ठेका भी मध्यलय का दादरा बजाया जाता है। तत्पश्चात् दादरे की लय में आल्हा की चोपड़ी' शुरू की जाती है। इस चोपड़ी का अन्त भी साखी जैसे 'तोड़' से किया जाता है। इसके बाद यदि आवश्यकता हुई तो चोपड़ी की तर्ज बदल दी जाती है, अन्यथा पूर्ववत् ही रखी जाती है। लड़ाई का प्रसग आने पर आल्हा कहरवा के ठेके में प्रथम मध्यलय में, तत्पश्चात् द्रुत लय में गाया जाता है। 'तोड़' सभी का एक जैसा है। बीच-बीच में, यदि आवश्यकता हुई तो प्रसंगानुसार 'लावनी' आदि की धुनों का प्रयोग किया जाता है। तात्पर्य यह कि कम से कम चार-छँ घण्टे के आल्हा-गान में धुनों और ठेकों की इस प्रकार की विविधता रखी जाती है कि श्रोताओं को 'कथा' के साथ-साथ संगीत का भी पूरा-पूरा आनन्द मिल जाता है।

इस सन्दर्भ में दतिया के सुप्रसिद्ध व वयोवृद्ध आल्हागायक गंगोले (उर्फ गंगाधर श्रीवास्तव) का नामोल्लेख अप्रासंगिक न होगा। यह वयोवृद्ध गायक वर्तमान में लगभग अस्सी वर्ष की वय प्राप्त कर चुका है, तथापि एक बैठक कम से कम छँ घंटे तक आल्हा गाने की क्षमता रखता है। गंगोले 'आल्हा' के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हैं। यदि उनकी वृद्धावस्था के अभ्यास पर ध्यान न दिया जाये, तो उनकी आल्हा-गायकी में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आने पायी है। उन्होंने अपनी युवावस्था में 'आल्हा' से सम्बन्धित लगभग सभी ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा की है और अपने 'आल्हा गान' से रसिकों को मंत्रमुग्ध किया है। उनके अपने वाद्य-वादक है, जो अपने मुखिया गायक की ही भांति 'आल्हा' के परम भगत हैं। सम्पूर्ण आल्हाकाव्य को कण्ठस्थ रखने के सन्दर्भ में गंगोले अपने आप में एक उहाहरण जैसे हैं।

गंगोले या गंगाधर श्रीवास्तव के पूर्ववर्ती आल्हा-गायकों में दमरूमहाराज जोधा और रामदयाल इन तीन गायकों का नाम प्रकाश में आया है। इनसे भी पूर्ववर्ती गायकों में हम नवलसिंह प्रधान के नाम उल्लेख कर सकते हैं। हालांकि, इस बात का कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता कि नवलसिंह प्रधान

गाते होंगे; लेकिन चूंकि उन्होंने आल्हा की प्रतिलिपि की थी, और आल्हा-शैली में रामायण-महाभारत को गाथाएँ छन्छोबद्ध की थीं, इससे इस अनुमान की पुष्टि ही अधिक होती है कि वे एक आल्हा गायक भी रहे होंगे। जनश्रुति भी कुछ कुछ ऐसी ही है।

आज आल्हा की जो परिपुष्ट शैली दतिया में प्रचलित है, (विशेषकर गंगोले के द्वारा जो गायी जाती है) उसके विकास का काफी कुछ श्रेय उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के बीच संगीतमय वातावरण को ही दिया जा सकता है, क्योंकि इस काल का वातावरण ही दतिया के सांगीतिक इतिहास का 'स्वर्णयुग' माना जाता है। इससे पूर्ववर्ती गान-शैली के बारे में यह जानकारी मिलती है कि 'आल्हा' के अन्तर्गत केवल 'साखी' चोपड़ी और लड़ाई गायी जाती थी और यह भी सीधे-साधे ढंग से, आज की भांति कलात्मक या रागात्मक नहीं।

अब हम दतिया की आल्हा-गायकी से सम्बन्धित उन अंगों की स्वर-लिपियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, जो दतिया में परम्परागत रूप से प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसी तर्जें हैं, जिनका दतिया में उपयोग किया जाता है। किन्तु विस्तार भय से उन्हें छोड़ दिया गया है। जिन छंदों की तर्जों को उदाहरण बनाया गया है, वे छन्द पहले लिखे जा रहे हैं।

(१) साखी :—आजा भमानी हिंगलाजनी, परजन पर करिये सहाय।
आल मनालऊँ अब जइ भूम पै, रच्छा करिये सारदा माय ॥
मरो मल्हारो सालै नहीं, ना सालै सिरसिला गांव।
कलगी आंस रई मोय मलखान की, सिर पै दयें है चौड़िया राय ॥

(२) चोपड़ी:—(आल्हा के ब्याह की) मोहिनी तर्ज,

जे दल बादल से रहे हैं छाय,
बाउन राजा अब मेले हैं,
गंगा जी पै मचो घमसान।
रंग विरंगे झण्डा गाड़ें -
राजन की यही पहिचान ॥

(३) तोड़ :—इतने बारी आल की नार,
अपनी सहेली संगे लयें हैं—
जाकें पौंचीं गंग के घाट ॥

(४) लड़ाई:—(पुरबिया तर्ज)

इतसें झपटो वीर ऊदलसों, उतसें चामुड़रा बलवान,
भारी जंग मची दोइयन में कटरये वीर हजारन ज्वान।
तेगा तओ चामुन्डराय नें, मन में धर महेस को ध्यान,
ढाल बढ़ाई अब ऊदल नें, बचगओ जच्छराज को लाल।

(५) श्रंगारः—(लावनी तर्ज)

बांदी नें रानी की पटियां पारी,
सेंदुर अबीर सें बोच की मांग संवारी।
महाराज गुंथी चोटी, रेसम न्यारी,
लहर लहर लहराय नागिनी सी मतबारी॥

उपरोक्त तर्जों की संगति के लिए मृदंग के निम्नांकित ठेके निश्चित है:—

(१) साखो :—धाधिंदि धाऽ तिट कता ऽध गिन कत् ऽ कत कत ता तिट कता ऽत गिन

(२) चोपड़ी :– तिऽऽधगिन । धा गे ना धा त्र क

(३) लड़ाई :—धिनगधा । धिनागिना
तिनगधा । तिना किना

(४) लावनी :—धातों धातो । तक धीं धातीं

(१) साखो

स – – – – –	म रे म प – – –	म – – रे –
आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ * * आ ऽ
रे ग स, स स रे	सग रेस नि, स रे रे	म म प म प ऽ
जा ऽ ऽ, भ मा ऽ	नीऽ ऽऽ ऽ, अ ब हिं	ग ला ऽ ज नी ऽ
– – म ग, ग ग	ग रे म ग ग ग	ग ग ग – – रेस,
ऽ ऽ ऽ ऽ, प र	ज न प र क रि	ये स हा ऽ ऽ य ऽ,
रे – रे ग म, स	स रे स ग रे स	नि – , नि नि स स
आ ऽ ल ऽ ऽ, म	ना ऽ ऽ ऽ ऽ ल	ऊँ ऽ, अ ब ज इ

रे रे ग ग स –	– – प, प प म	म ग ग रे रे स
भू ऽ म पै ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ, र च्छा ऽ	क रि ये ऽ सा ऽ
रे ग ग म नि –	स – – – – स	– – रे रे म म
ऽ ऽ र दा ऽ ऽ	मा ऽ ऽ ऽ ऽ य	* * म रो ऽ म
म प म प – –	म ग, ग – ग रे	म ग – – – –
न्हा ऽ ऽ री ऽ ऽ	ऽ ऽ, मा ऽ लै ऽ	नहीं ऽ * * *
– – ग – ग –	ग रे म म ग ग	– – ग – – –
* * ना ऽ सा ऽ	लै ऽ मि र सि ला	ऽ ऽ गां ऽ ऽ ऽ
–रेम ग ग ग रे	म म रे रे स नि	– – निनि म म
ऽ य ऽ, क ल गी ऽ	आँ ऽ म र ई ऽ	ऽ ऽ मो ये म ल
रे रे ग ग म –	– – म सं सं नि	ध प म ग म –
रक ऽ न की ऽ ऽ	ऽ ऽ, म र पै ऽ	द यें हैं ऽ चो ऽ
रे ग ग म नि –	स – – – – म	
ऽ ऽ ड़ि या ऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ ऽ य	

(२) आल्हा की चौपड़ी (दादरा) मोहनी तर्ज

– – प – प ध	ग – म ग म –	ग ग रे म –रे	म ग - - - रे
– – जे ऽ द ल	बा ऽ द ल से ऽ	र हे ऽ हैं ऽ ऽ	छा ऽ ऽ ऽ ऽ य
×	×	×	×
स रे रे – रे रे	रे– स रे ग –	– – रे म म रे	नि - – म - -
* * वा ऽ उ न	रा ऽ ऽ जा ऽ ऽ	ऽ ऽ अ ब मे ऽ	ले ऽ ऽ हैं ऽ ऽ
प – – प – –	ग - म ग म –	ग ग रे म म रे	म ग - - - रे
ऽ ऽ ऽ गं ऽ ऽ	गा ऽ जी ऽ पै ऽ	म चौ ऽ घ म ऽ	सा ऽ ऽ ऽ ऽ न
स रे रे – रे रे	रे – स रे ग –	– – रे म म रे	नि - - म - -
* * रं ऽ ग बि	रं ऽ गे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ झं ऽ डा ऽ	गा ऽ ऽ ड़ें ऽ ऽ
प - नि ध प ध	ग ग म ग म -	ग ग रे म म रे	म ग - - - - रे
हां ऽ ऽ रा ऽ ऽ	ज न की ऽ य ऽ	ही ऽ ऽ प हि ऽ	चा ऽ ऽ ऽ ऽ न

(३) चोपड़ी का तोड़

– – नि़ नि़ स –	रे – ग – म – –	प प - प - ध	प सं नि॒ ध प ध
– – इ त ने ऽ	वा ऽ री ऽ आ ऽ	ऽ ल ऽ की ऽ ऽ	ना ऽ ऽ ऽ ऽ र
×	×	×	×
ग ग ग – ग स	स - रे नि़ - -	- – नि स – –	रे रे ग ग स -
अ प नी ऽ स ऽ	हे ऽ ऽ ली ऽ ऽ	ऽ ऽ सं ऽ गै ऽ	ल यें ऽ है ऽ ऽ
×	×	×	×
स - सं - सं नि॒	ध प म ग स -	रे ग ग स नि़ -	स - - - - स
ऽ ऽ जा ऽ कें ऽ	पीं ऽ ची ऽ हैं ऽ	गं ऽ ग के ऽ ऽ	घा ऽ ऽ ऽ ऽ ट
×	×	×	×

(४) चोपड़ी की पुरबिया तर्ज (वहरवा)

×	×	×	०
स़ म म –	म म म रे	प म म म	म म म – –
इ त में ऽ	झ प टौ ऽ	वी ऽ र ऊ	द ल सीं ऽ
रे म म –	प म म म	प म म म	म – , म प
उ त सें ऽ	चा ऽ मु ड़	रा ऽ ब ल	वा न , अ रे
प सं सं -	नि॒ ध प प	प ध ध प	मम ग रे रे सस
भा ऽ री ऽ	जं ऽ ग म	ची ऽ दो इ	यन में कट रये
ग – ग म	ग रे रे स	स – – –	– – , रे ग
वी ऽ र ह	जा ऽ र न	ज्वा ऽ ऽ ऽ	ऽ न , अ रे
म – म –	म – म ग	प म म म	म - मम म -
ते ऽ गा ऽ	द औ चा ऽ	मुं ड़ रा ऽ	ने ऽ मन में
रे म म म	प म म –	प म म – –	प म म प
ध र म हे	ऽ स कौ ऽ	ध्या ऽ ऽ ऽ	न ऽ, अ रे
प सं सं सं	नि॒ ध प –	प ध ध प	मम ग रे म
ढा ऽ ल अ	ड़ा ऽ ई ऽ	अ व ऊ ऽ	दल ने बच गऔ
ग – ग म	ग रे रे स	स – – –	– स – –
ज ऽ च्छ रा	ऽज कौ ऽ	ला ऽ ऽ ऽ	ऽ ल * *
×	×	×	×

(१) लावनी

×	०	×	०
प – – प – –	प – – ध॒ प	ग ग॒ रे म	म रे ग॒ म
बाँ ऽ दी ऽ	ने ऽ रा ऽ	नी ऽ की ऽ	पटि याँ ऽ
ग॒ रे स – –	– – – – म प	प प प प	प प ध॒ प
पा ऽ री ऽ	ऽ ऽ सें ऽ	दु र अ बी	ऽ र सें ऽ
म ग॒ रे स	स रे ग॒ म	ग॒ रे म – –	– – – प ध
वी ऽ च की	मां ऽ ग सं	वा ऽ री ऽ	ऽ ऽ म हा
सं – – सं सं	सं रें संरें ग॒	सं रें सं नि॒	ध म प ध॒
रा ऽ ज गूँ	थी ऽ चोंऽ ऽ	टी ऽ ऽ ऽ	रे ऽ स म
नि॒ सं प – –	– – – – – – – –	स प प प	प ध॒ प ध॒
वा ऽ री ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ल ह र ल	ह र ल ह
म प म म	ग॒ ग॒ ग॒ म	प ध॒ प म	ग॒ ग॒ रे रे
रा ऽ य ना	ऽ गि नी ऽ	जै ऽ सी ऽ	म त वा ऽ
स – – – – –	– – – –,		
री ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ,		

दतिया में इसी प्रकार की आल्ह-गायकी* का सूत्रपात किस काल में हुआ, उसे पुष्ट-प्रमाणों के अभाव में बता सकना मुश्किल है। तथापि, जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, दतिया का 'मलखान की चौकी' का निकट-वर्ती होना और स्थानीय जन-मानस में लोकनायक आल्हा के प्रति श्रद्धा-प्रेम होना ही इस सूत्रपात का मूल हो सकता है। दतिया का एक प्राचीन नगर होना और उस नगर में संगीत की दीर्घ कालिक परम्परा का जीवित रहना भी इसका कारण हो सकता है। कोई आश्चर्य नहीं जो दतिया की सुसम्पन्न सांगीतिक परम्परा ने ही यहाँ के आल्हा-गायकों को एक नवीन तथा भिन्न प्रकार की आल्हा-गायकी को जन्म देने के लिए प्रेरित कर दिया हो। जो भी हो, इस गान शैली का इतिहास एक स्वतन्त्र शोध का विषय है। संक्षेप में,

सिर्फ यही कह सकते हैं कि गंगोले के बाद इस गायकी का सिर्फ नाम ही शेष रह जायेगा।

* इस आल्हा गायकी का प्रचलित वर्तमान स्वरूप बहुत कुछ श्री गंगाधर श्रीवास्तव 'गंगोले' की अथक साधना के कारण परिपुष्ट हुआ है। इन्होंने आल्हा-गान की प्रेरणा दमरू महाराज और नंदकिशोर राजगुरु से प्राप्त की थी।

आल्हा की साखियां

—गोविन्द प्रसाद वर्मा

वीर प्रसवनी भूमि बुन्देलखंड में वीर काव्य "आल्हा" को लोकगीतों के अन्तर्गत एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है, इस जनपद के किसी भाग में इसे 'आल्हा' किसी अन्य भाग में 'सैरो' नाम से पुकारा जाता है। इस गीत का गायन अधिकतर बनाफरी शैली में होता है। आल्हा-गायन का समय तथा मौसम वर्षारंभ की काली घटाओं से आच्छादित रात्रि है, जब पावस के उमैंड़े-ऍंड़े बैंड़े झला अपनी कला दिखा रहे होते हैं। ग्राव की चौपाल में सार्वजनिक रूप से आल्हा का आयोजन किया जाता है तथा इस ओजपूर्ण गीत को सुनने के लिये बाल, युवा, वृद्ध सभी समूहों में एकत्र होकर उमड़ पड़ते हैं। श्रोता-मण्डली के मध्य गायक ऊँचे स्थान पर आसीन होता है तथा उसका सहयोगी ढोलक-वादक ठीक सामने आसन जमाता है और ढोलक की थाप से गीत का समां बांधता है।

बुन्देलखंड का ग्रामीण अंचल बरसात में वीररस पूर्ण 'आल्हा' गीत से अहलादित हो उठता है, एक प्रकार की मस्ती छा जाती है एवं जनजीवन में उल्लास भर जाता है। जनपद की लड़ाकू जातियों (बुन्देले, चन्देल, चौहान, परमार, बनाफरी, दांगी, लोधी आदि) के युवक अपने-अपने पूर्वजों के बलपौरुष का बखान सुनकर मूछों पर ताव और जंघाओं पर ताल देने लग जाते हैं। आल्हा राजारंक सभी को प्रिय लगता है और सभी तन्मयता से सुनते हैं।

भूतपूर्व बिजावर राज्य के स्वर्गीय नरेश महाराज सावन्त सिंह जू देव एक वीर और स्वाभिमानी क्षत्रिय थे। उनमें सभी नरेशोचित गुण विद्यमान थे एवं वह गीता के महाकाव्य 'नरानांचे नराधिपा" को भली भांति सार्थक करते थे। उनकी रुचि "आल्हा" गीत में अधिक थी—और वह बनाफर बंधुओं (आल्हा ऊदल) की वीरता के प्रशंसक थे, पोषक थे। अपने शासन-काल में प्रतिवर्ष "आल्हा" गीत वह नियमित रूप से एक पखवारे तक सुना करते थे, आम जनता भी इसका लाभ किले के भीतर बैठकर लिया करती थी। गायक होता या मोती मेहतर, स्वर्गीय महराज के आखेट-दल का एक

सदस्य, जो १५ दिन तक किले से पक्की लाग (पूड़ी, साग, मिठाई का भोजन) का बंधेज पाता था और अन्त में एक सिरोपा (साफा, पाजाम, कोट) भी पारितोषक-विदाई में उसे दिया जाता था। राज्य के इस सम्मान का लाभ मोती के सहवादक को भी मिलता था। आल्हा गायक को ऐसा प्रश्रय मिलते लेखक ने स्वयं देखा है और सामन्ती युग में ललित कलाओं के संरक्षण एवं कलाकारों के सम्मान का स्वरूप कैसा था वह भी अनुभव किया है। दूसरे रूप में ललित-कलाओं को जीवित रखने तथा विकसित करने की प्रतिस्पर्धा राज्यों मे प्रचलित थी एवं इनमें निहित रहता था गरीबों की पालना का मुख्य उद्देश्य।

'आल्हा' में साखियों का समावेश किया जाता है यद्यपि मूल कथानक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। ये एक प्रकार के मुक्तक छन्द होते हैं तथा अतुकान्त भी। इनकी रचना गायक यथास्थान उन्हें फिट करने के लिये तत्काल कर लेता है अथवा पूर्व रचित साखियों का तालमेल प्रस्तुत कथानक से बैठाकर गाता है। यह सभी उसकी चतुरता पर निर्भर करता है, मुख्यतया 'साखियों' का प्रयोग कथानक की भूमिका तैयार करने या गायकी का ठाठ जमाने में किया जाता है। साखियों में नीति, ज्ञान और धर्म के उपदेश अवश्य निहित रहते हैं, जो जनता पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। स्वर, ताल एवं लय का समन्वय अति आवश्यक है।

अच्छा, तो आइये, गांव की चौपाल में चलकर 'आल्हा' की साखियों का आनन्द लें तथा साखियों के माध्यम से काव्य का रसास्वादन करें। गायक, पहिली साखी के द्वारा मौसम की अनुकूलता बतलाते हुये गायकी का ठाठ जमाता है —

> सावन सुहावनी रे मुरली लगै, भईया भदवां सुहावनी मोर।
> तिरिया सुहावनी रे जबई लगै, ललना खेले पोंर के दोर।।

आगे की अन्य साखियों में मानव-जीवन की असारता पर बल देते हुये, सूरमाओं को अपना कर्त्तव्य निभाने को उत्तेजित करता है—

> सदां तुरैया रे फूले ना, यारो सदां ना सावन होय।
> सदां सूरमा ना रन पै चढ़े, यारो जौ दिन सदां न पावै कोय।
> नौन हरामी रे चाकर मरै, यारो मरै बैल गरयार।
> चढ़ी अनी पै जो कोऊ बिचलै, ती की मरै गरभ सें नार।।

ग्राम जीवन में बुराइयों का पनपना तथा उनके निराकरण हेतु चेतावनी देने का काम भी साखियां करती हैं—

> खेत बिगारे देखो कूरा-कांस नें, उर चुगली नें बिगारे गांव।
> ज्वान बिगारे रे मिहरन नें, जिन खो दओ पुरखन को नांव।।
> रूख चढ़ैया रे जलदी मरै, यारो नदिया को पैरन हार।
> पर नारी को रे भोगईया, इनकी मौत सीस मड़राय।।

अशोक वाटिका में शोक मग्न माता जानकी की करुणामयी मूर्ति का चित्रण और भी सुन्दर बन पड़ा है—

> पतरी उँगरियां माता सीता की, जिनके निर्बल हो गये सरीर।
> बैठीं बिसूरें गढ़ लंका में, मोरी सुध काये न लई रघुबीर।।

कहा जाता है कि आल्हा-ऊदल बनाफर बन्धुओं ने विभिन्न लड़ाइयां लड़ी हैं, जिनमें विजयश्री उन्हीं के हाथ रहीं। इन्हीं लड़ाइयों के कथानकों पर "आल्हा" काव्य आधारित है। कथानकों में आल्हा, ऊदल, लाखन, मलखान, ब्राह्मा, ताला सैयद आदि सूरवीरों की वीरता का बखान किया जाता है, जिसका श्रेय चन्देलाश्रित कवि जगनिक भट्ट को है जो स्वयं एक वीर योद्धा के नाते प्रत्यक्षदर्शी था, विश्वसनीय था। उरई की लड़ाई को प्रस्थित होते समय की लाखन और उनकी नवविवाहिता रानी के संवाद की चन्द साखियां यहां दी जा रही हैं जो अपने ढंग की अनूठी हैं।

शृंगार और वीर रसों का यह वाक्य-युद्ध रानी-राजा के माध्यम से होता है। अनेक दांव-पेंचों के प्रयोगों के पश्चात अन्त में शृंगार को अपनी पराजय माननी पड़ती है तथा वीर विजयोल्लास के साथ अपना कर्त्तव्य पूरा करता है। रानी बहादुर पति लाखन के सामने हार मानती हुई, उन्हें रोकने को दूसरा उपाय सोचती है। वह भोजन के पश्चात प्रस्थान करने का प्रस्ताव रखती हुई, कहती है—

> "चांवर चकौटन मैंने धेकें धरे, अरु घी मोकें कनक उर दार।
> घरियक बिलमौरे मोरे कन्ता, तुम्हारी धनियां तपै जेवनार।।

लाखन को पकवानों की क्षुधा कहां? उस वीर को तो पूर्व ही रण-निमंत्रण मिल चुका है और वह शत्रुओं से लोहा लेने को उतावला हो रहा है। उसकी क्षुधा– तृप्ति तो शत्रु-संहार से ही होना है, भौतिक व्यंजनों से नहीं, अस्तु वह उत्तर देता है —

> "चांवर बिरंईयन को चुनवा देव, बाम्हनें दे देव कनक घीऊ दार।
> मोरो पनवारो, प्यारी उरहंई परो, परसा ठांड़ो चौड़िया राय।।'
> बैठी रइयो री सतखंडन, सुख सें खइयो डबन के पान।
> जीत जंगरियां जब घर लौटे हों, तुमरी मोतिन सें भरा देंव मांग।।

रानी तत्काल उत्तर देती है जिसमें विरह की व्याकुलता, पतिपरायणता एवं नारी के लिये पति ही सर्वस्व है, इस सदसंकल्प की उत्कृष्टता प्रकट होती है। मानस की यह अर्धाली "जियबिन देह, नदी बिन बारी· तैसहि नाथ पुरूष बिन नारी" रानी के शब्दों में प्रतिध्वनित होती है। वह तिलमिला उठी, बोली—

"जबस्न जाबें तोरे सतरखंडा, इन पानन पै परैं तुषार।
तोरे अकेलें इक जियरा बिन, मोकौं सूनो लगै सिसार।"

वह प्रकृति का भी सहारा लाखन को रोकने में लेती है और उमड़ती आती काली घटा से प्रार्थना करती है कि मेरे कन्त को रोकने में सहायक हो—

"कारी बदरिया री तोहि सुमरौं, पुरवई परौं तिहारे पाँय।
आज तो वरस जाई कनबज पै, मोरे कन्ता घरै रहि जाँय॥

इस प्रकार प्रतीत होता है कि "आल्हा" की साखियाँ कथानक के साथ परम्परागत रीति से जुड़ी नहीं हैं, वरन् उनका अवतरण देश, काल एवं समय के अनुसार गायकों द्वारा ही होता रहता है, जिनका उपयोग वह गायकी तथा कथानक की भूमिका तैयारी में करते है।"आल्हा गीत" के शेष पद्यांश जैसे सम्बन्धी राजा का ऐश्वर्य-पराक्रम-वर्णन उसकी सेना संगठन तथा शौर्य-प्रदर्शन वीरों का अन्तिम स्वांस तक शत्रु से लोहा लेने की दृढ़ प्रतिज्ञा आदि तो स्थायी स्तम्भ होते हैं और वह प्रायः सभी लड़ाइयों में समान से पाये जाते हैं, केवल मूल कथानक और उसके पात्र ही बदले जाते हैं।

"आल्हा" गायन से अकर्मण्यता, उदासीनता तथा आलस्य तिरोहित होकर साहस, शक्ति, सक्रिय संगठन का संचार होता है। जनपद में जाग्रति की लहर दौड़ जाती है जो राष्ट्र को शक्ति शाली बनाता है लोकगीतों मे "आल्हा की साखियाँ" नागरिकों को पुरूषार्थी बनाने मे अपनी प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

It is a noble story, replete with incident, and with characters well contrasted, It appeals for more closely to English sympathies than do the comparatively artfiicial epics of Sanskrit Literature.

G. A. Grierson

[टीप–डॉ० ग्रियर्सन के इस कथन में संस्कृत के महाकाव्यों के प्रति दुर्भाव का प्रश्न नहीं है, वरन् आल्हखण्ड की प्रभावी अपील का समर्थन है।]

आल्हा की विविध वर्णनाएं

सम्पादन एवं टिप्पणी: डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

जगनिक का लोकमहाकाव्य 'आल्हाखंड' किस रूप में था, यह खोज का विषय है। विद्वानों के विभिन्न अनुमान हैं, परन्तु इसी जनपद के बुन्देली में रचित प्राचीन ग्रंथों—परमाल रासो, आल्ह राइछो, दलपतराय रायसो आदि से सिद्ध है कि आल्हखंड लोककाव्यात्मक शैली का लोक प्रबन्ध था। परमाल-रासो में जगनिक कवि का बार-बार उल्लेख इसका साक्षी है कि रचनाकार पर उस प्रबन्ध का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। आल्ह राइछो की शैली लोक-काव्यात्मक है और दलपतराय रायसो (१७०७ ई०) में तो भाट जगनक्क (जगनिक) का सम्मानपूर्वक स्मरण किया गया है। इससे सिद्ध है कि आल्ह-खंड एक प्रबन्ध के रूप में रचा गया था, लेकिन उसकी शैली लोककाव्यात्मक थी। परमाल रासो और दलपतराय रासो दोनों के रचनाकार अपने ग्रन्थों में कवि चन्द और जगनिक दोनों का उल्लेख और स्मरण करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि मध्ययुग में वीरप्रबन्धों की दो भिन्न धाराएँ प्रवाहित थीं—एक शास्त्रीय प्रबन्ध की, जिसका श्रेय चँद को था और दूसरी स्वच्छन्द लोकशैली के प्रबन्ध की, जिसके जनक जगनिक थे। अतएव यह निश्चित सा है कि आल्हखंड लोकशैली का वीर प्रबन्ध ही था। दूसरे वह बुन्देली लोकभाषा एवं आल्ह छन्द में लिखा गया था, वरना आल्हा छन्द की इतनी लोकप्रियता और इतना अधिक प्रसार न होता।

उद्‌भव और विकास

प्रारम्भ में आल्हखंड की लोकप्रियता के कारण उसके विभिन्न प्रसंगों को अलग-अलग गाने का प्रयत्न हुआ होगा, फिर उन प्रसंगों का विकास हर कालावधि में क्रमश: होता गया। पहले बुन्देली के विशाल क्षेत्र में ही विभिन्न भाषा-रूपों में उसकी वर्णनाएँ प्रचलित हुईं, बाद में धीरे-धीरे उत्तर भारत की हर लोक भाषा में उसने अपना एक अलग रूप ग्रहण कर लिया। विकसन शीलता की हर स्थिति में उसकी वस्तु, भाषा आदि में परिवर्तन और परिवर्द्धन की प्रक्रिया चलती रही। हर क्षेत्र की संस्कृति के अनुरूप उसमें कुछ नाम,

स्थान, रंग, संस्कारादि जुड़ते गये। इस प्रकार वर्णनाओं के उद्भव और विकास की एक सहज प्रक्रिया निरंतर गतिशील रही।

विविधता के क्षेत्र

बुन्देली क्षेत्र में अनेक वर्णनाओं का प्रसार दिखाई पड़ता हैं। उदाहरण के लिये महोबा, सागर, दतिया आदि की वर्णनाएँ बहुत कुछ भाषा रूप के कारण और बहुत कुछ क्षेत्रीय रंग और गायकी की भिन्नता के आधार पर भिन्न हो गई हैं। बुन्देली जनपद के अलावा 'आल्हा' की लोकप्रियता मैथिली मगही, भोजपुरी, अवधी, बघेली, कनउजी, ब्रजी, कौरवी आदि जनपदों में इतनी अधिक है कि वह उस जनपद के लोकजीवन एवं लोक सहित्य की पहचान का एक अंग बन गया है। कन्नौज और बाराबंकी में तो 'आल्हा' की शोध से सम्बोधित संख्याएँ हैं, जो प्रतियोगिता, सेमिनार एवं उत्सवों का आयोजन करती हैं। लोकभाषाओं के शीर्षस्थ विद्वानों ने अपने जनपदों के 'आल्हा' को श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी बताया है। डा० सत्येन्द्र ने लिखा है कि ब्रज में ढ़ोला के बाद लोकप्रियता की दृष्टि से आल्हा का स्थान है। डा० सत्यव्रत सिन्हा का कथन है कि भोजपुरी वीर कथात्मक लोक गाथाओं में आल्हा का स्थान प्रमुख है। डा० सन्त राम अनिल का मत है कि कनोजी में जितने भी पँवारे उपलब्ध होते हैं, उनमें प्रचार, व्यापकता और लोकप्रियता की दृष्टियों से आल्हा का स्थान सर्वोपरि है। शायद इसीलिये डा० कृष्णादेव उपाध्याय ने सभी वीरगाथाओं से 'आलहा' को श्रेष्ट माना है। मतलब यह है कि हर जनपद में आल्हा का प्रचलन और लोकप्रियता स्वयं सिद्ध है।

रूप भेदों की पहचान

एक ही वर्णन में रूपभिन्नता मिलती है, जो दो प्रकार की है। भाषा के थोड़े से परिवर्तन के कारण वर्णना उतने रूपों में पाई जाती में, जितने में लोकभाषा विभाजित की जा सकती है। उदाहरण के लिए पूर्वी और पश्चिमी भोजपुरी की वर्णनाओं में भाषागत भिन्नता स्वाभाविक है। दूसरे प्रकार का रूपभेद कम से कम तीन प्रकार का होगा–(१) लोकमुख में जीवित, जिसका कोई लिखित रूप नहीं है और जो प्राचीन काल से परमपरित दाय के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली आती है। (२) अल्हैतों की वर्णन, जो हर अल्हैत के द्वारा कुछ न कुछ बदली और बढ़ाई जाती है। (३) रचनाकार द्वारा रचित आल्हा, जो लोक ने अपना लिया हो। इन सभी रूपों को आसानी से परखा जा सकता है। अन्त की तीनों वर्णनाएँ भी लोकभाषा की उपबोलियों में कुछ भिन्न हो जएंगीं।

तुलनात्मक अनुशीलन

आल्हा की विभिन्न वर्णनाओं की तुलना करने से उनके वस्तुगत और शैलीगत अन्तर का परीक्षण किया जा सकता है और उसके आधार पर कुछ महत्वपूर्ण एवं उपयोगी निष्कर्ष निकल सकते हैं। एक ही तरह की वस्तु के प्रतिपादन में हर जनपद और उसकी लोकभाषा की विशिष्ट प्रवृत्ति क्या है और लोक सहित्य की शैली में क्या विशेषता है, इसकी सही पहचान तो कम से कम प्रकाश में आ सकती है। मेरी समझ में तटस्थ रूप में परखने पर हर बोली और उसके साहित्य की वह विशिष्टता, जो दूसरी में नहीं है अथवा अपेक्षाकृत न्यून या अधिक है, खोजी जा सकती है। ऐसे और भी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। डा० सत्यव्रत सिन्हा ने आल्हा के ब्याह प्रसंग को लेकर बैसवारी और भोजपुरी रूपों की तुलना की है और दोनों की वस्तु में समानता तथा अन्तर को स्पष्ट करते हुए कुछ निर्णय लिये हैं। यद्यपि सिन्हा जी ने केवल वस्तु के आकार-प्रकार को ही देखा है और दूसरी सूक्ष्मताओं पर उनकी निगाह नहीं गयी है, तथापि इस प्रकार के प्रयत्नों से निश्चित ही मूल्यवान तथ्य सामने आ सकेंगे।

गायकी का अन्तर

हर जनपद की आल्हा-गायकी में समानता और भिन्नता की दोनों स्थितियाँ संभव हैं। यहाँ तक कि एक ही जनपद के एक क्षेत्र की गायकी दूसरे से कुछ या अधिक भिन्न हो सकती हैं। हर क्षेत्र की गायकी के परिचय, स्वरलिपि के अध्ययन और दूसरे क्षेत्र की गायकी से तुलना के द्वारा क्षेत्रीय लोकसंगीत के वैशिष्ट्य का परिज्ञान किया जा सकता हैं। अभी उज्जैन के श्री प्यारे लाल श्रीमाल ने मालवी के लोकसंगीत पर शोधकार्य किया है, अगर इसी तरह का कार्य हर जनपद में होने के बाद तुलनात्मक रूप भी सामने आये, तो बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। खास तौर से एक ही वस्तु का निर्वाह करने वाले लोकगीत या लोकगाथा की गायकी का।

मूल पाठ का निर्धारण

विभिन्न वर्णनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से 'आल्हा' के मूल रूप या उसके निकट के पाठ को निर्धारित किया जा सकता है। उसके परिवर्तित या परिवद्धित अंशों अथवा प्रक्षिप्त प्रसंगों को अलग रखकर सही पाठ के प्रकाशन से अनेक भ्रमों का निवारण अपने आप हो जायेगा और उसके तत्कालीन इतिहास, संस्कृति आदि का भी स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा। आल्हा के एक प्रसंग 'आल्हा-मनोआ' की विविध वर्णनाओं को संकलित कर उसके पाठ-

निर्धारण का प्रयत्न इस कार्य का अभीष्ट अंग था, पर कुछ बाधाओं के कारण पूरा नहीं हो सका।

प्रस्तुत वर्णनाएँ

यहां पर बुन्देली की कुछ वर्णनाओं के साथ अन्य लोकभाषाओं की कुछ वर्णनाएँ दी जा रही हैं। संक्षिप्त टिप्पणियां भी। केवल इस उद्देश्य से कि पूरा चित्र खड़ा न हो सके, तो कम से कम कुछ ऐसी रेखाएँ उभरें जो चित्र का आभास दे सकें और विद्वानों को आकर्षित करने में समर्थ हों। इनमें कुछ प्रकाशित-अप्रकाशित रूप लिये गए हैं। इस आशा और संभावित के साथ कि भविष्य में सही चित्र अवश्य लिखा जा सकेगा, भले ही महाकवि बिहारी यह कहें कि 'भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।'

बुन्देली

बुन्देली जनपद के अंतर्गत इक्कीस-बाईस जिलों का बहुत बड़ा क्षेत्र है। इस लोकभाषा की उपबोलियां भी कई हैं। पँवारी, लोधान्ती या राठौरी, खटोला, बनाफरी, कुंड्री, निभट्टा, भदावरी आदि सभी बुन्देली की शाखाएं हैं। साथ ही इस भाषा के मानक रूप के क्षेत्र में भी झांसी-ओरछा, सागर, हमीरपुर, होशंगाबाद कम से कम चार-पाँच ऐसे टुकड़े किए जा सकते हैं; जिनमें भाषारूप का थोड़ा-बहुत अन्तर है। इस तरह बुन्देली में भी 'आल्हा' की कई वर्णनाएं मिलना असंभव नहीं है। इसके अलावा लोकप्रचलित अल्हैतों की पेशेवर और रचनाकारों की वैयक्तिक वर्णनाएँ भी हैं। इस संकलन में आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व प्रसिद्ध इतिहासकार वी० स्मिथ द्वारा ली गयी बनाफरी की वर्णना, सागर क्षेत्र में प्रचलित स्व० लोकनाथ शिलाकारी द्वारा संकलित वर्णना एवं प्रसिद्ध अल्हैत स्व० शिवराम सिंह द्वारा गायी जाने वाली वर्णना को स्थान दिया गया है। प्रसिद्ध रचनाकारों-शिवू दा, देशराज भट्ट आदि के आल्हा को अलग दूसरे खंड में उद्धृत किया गया है; क्योंकि उनके काव्य लोकप्रिय होते हुए भी अभी पूरी तरह लोक द्वारा अपनाए नहीं गए।

यह क्षेत्र तो आल्हा का गढ़ है। इसी केन्द्र से सभी दिशाओं में उसका प्रसार हुआ है। यहां के गाँव-गाँव में, मुहल्लों की खास-खास दुगई में वर्षा होने के साथ 'आल्हा' का गायन शुरू हो जाता है। कुछ क्षेत्रों में यह लोक विश्वास आज भी है कि आल्हा गाने से वर्षा होती है. पर अन्य में अकसर यह कहा जाता है कि आल्हा का मजा (आनन्द) तभी है, जब पानी की झड़ी लगी हो। वैसे तो आज भी किसी खास मौसम की प्रतीक्षा नहीं की जाती और किसी भी उत्सव या अवसर पर उसका आयोजन किया जाता है। कभी-कभी आल्हा की प्रतियोगिता भी होती है जो दो तरह से सम्पन्न की जाती

है। अगर चार-पाँच प्रमुख अल्हैत होते हैं, तो एक या दो रात हरेक को निश्चित कर दी जाती है अथवा केवल एक या दो रात में प्रतियोगिता पूरी होना हो, तो हर गायक को निर्धारित समय पर अपना गायन पूरा करना पड़ता है।

बुन्देलखंड में 'आल्हा' को सैरा कहा जाता है। सैरा शब्द कहाँ से आया है, यह खोज का विषय है। शब्दकोश में सैर का लाक्षणिक अर्थ मनोरंजन के लिए किसी पुस्तक को पढ़ना है, शायद पढ़ने और फिर गाने के अर्थ में सैर से सैरा हो गया हो। प्राचीन काल में 'आल्हा' के एक प्रसंग या लड़ाई को पंवारा या पँवारो (पँवाड़ा), समो या समय, मार (लड़ाई) कहा जाता था, पर अब ऐसा प्रचलन नहीं हैं। इस क्षेत्र में पँवारे का अर्थ लम्बी कथा से लिया जाता है। मुहावरा है—'का पँवारो गाउत' अर्थात् बहुत लम्बा वर्णन करते हो। अब तो आल्हा का भी मुहावरे में प्रयोग हो गया है-'का आल्हा गाउत'। इसी तरह समय या समो का अर्थ व्याख्यान भी दिया गया है और अमरकोष में संविद या ज्ञान भी। पृथ्वीराज रासो के रचयिता ने संभवतः व्याख्यान के अथवा काल के अर्थ में (जैसे अकबर-काल, ऐतिहासिक काल-सीमा के रूप में) प्रयुक्त किया हो। महोबा रासो के रचयिता ने अपने ग्रन्थ का नाम 'महोबा समय, ही दिया था और उसमें अनेक प्रसंगों की योजना की थी।

गायकी की दृष्टि से भी बुन्देली क्षेत्र में विविधता मिलती है। महोबा आल्हा-गायकी सर्वाधिक ओजस्विनी है। गायक का जोशीला स्वर असाधारण प्रभाव क्षमता रखता है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध अल्हैत स्व० शिवराम सिंह के आल्हा-गायन के दौरान उससे प्रभावित होकर एक बार एक व्यक्ति ने अपने शत्रु को गोली मार दी थी। बहरहाल, गायक के स्वर से अंग-अंग फड़क उठता है। इस गायकी में स्वर प्रधान है, ढोलक और मंजीरा केवल सहायक। गायक पहले मध्य लय में, फिर द्रुत में गाता है और उसी के अनुरूप ढोलक पर थापें पड़ती हैं। द्रुत के बाद अधिकतर वह बिना ढोलक और मंजीरा के कवितानुमा गाता है, बीच-बीच में ढोलक की थाप उसे लय देती है। फिर मध्य लय में आकर धीरे-धीरे स्वर आरोह पर पहुँचता है और अन्त में द्रुत की चरमसीमा पर एक विराम सा पलभर के लिए आता है। इस तरह एक चक्र पूरा होता है। इसी क्रम से वह लम्बे समय तक श्रोताओं को बाँधे रखता है। सागर की गायकी में उतना जोश और ओज नहीं है। गायक के स्वर में उतना आरोह नहीं है और न लय में उतनी द्रुति, लेकिन वह मध्य लय के आस-पास गाता हुआ संगीतात्मक अधिक है। पुछी करगवां की गायकी में भी सागर के समान मध्य लय अधिक प्रयुक्त होती है. लेकिन उसमें लोच और मधुरता अधिक है। दतिया तक पहुँचकर आल्हा-गायकी

संगीतात्मक हो गई है। बाजों और धुनों में विविधता आ गई है और इस तरह गायकी शास्त्रीयता से बहुत कुछ जुड़ती सी प्रतीत होती है। फिर भी 'लड़ाई' के गायन में उसमें ओजत्व के स्वर आल्हा के प्रभाव को सुरक्षित रखने में समर्थ हैं। लेकिन जिस दिन संगीतात्मकता के प्रति अधिक लगाव हो जाएगा, उसी समय से गायकी का अपेक्षित प्रभाव नष्ट हो जाएगा। इस संभावित खतरे के प्रति गायकों की सजगता आवश्यक है।

बनाफरी

नगर महोबा में देखो ना देखो न फिरतुवा ताल।
रानी पद्मिनी का देखो या ना पूज्यो ना मनियाँ देव।
एड़ी महावर छूटो ना लागो न चुनरिया दाग।
तोही न चहिये चोड़ामन कर डारो निरासिन[1] रांड।
लै ले सरापें चोड़ामन बर के खाक हुइ जास॥
दीन्हीं जुवाबें तब चोड़ा ने बेला सुन बात हमार।
कुसगुन दशालति हा ग्वांड़ा[2] मा कुछ मो से कहो न जाय।
कहै गुसैंयाँ ने मो ने कीन्ही तोही बुरा लाग कस आज।
स्याही सुपेती का मैं मालिक संभर[3] मा हीसा तिहाव[4]।
हुकुम दीन्ह है पृथ्वीराज ने धर ल्याऊँ पद्मिनी नारि॥

दीन्हीं जुवाबें तब बेला ने चोड़ा सुन बात हमार
एक लरकवा के मारे तैं ब्वालस बढ़ बढ़ बोल।
सास हमारी का घर पैहै जब डिल्ली दिया नष्ट हो जाय।
दीन्हीं जुवाबें तब चोड़ा ने बेला सुन बात हमार।
हुकुम तो दीन्हो या ने रामा का काका सुन बात हमार।
दूजो ब्रह्मा है उरई मा सेवा करै बनाफर[5] आल्ह।
न्याहर[6] राजा है महुबे का धर ल्याव पद्मिनी नारि।
यहै पिथौरा जानै न जानै ना सती बल्लार।
घाट कालपी भे निकरी जा धर ल्याव पद्मिनी नारि॥

हंस कै बेला बोलन लगी काका सुन बात हमार।
नाहर पाले हैं परमाल[7] ने राखैं भुइँ-घरा[8] मांझरै[9]।
अँगुरी उठाय देय परमाल तो डारैं जान से मार।
अच्छे अच्छे घोड़ा लै ले औ लै ले नीक[10] सवार॥
आधी रात के अमला[11] मा निकर जा पल्ले पार।
इतनी बातें सुनी बेला ने दीन्ह गुरू ललकार।

बाँदी बाँदी कहि गुहिरावै[12] बाँदी सुन बात हमार।
जैवैं जैयँ[13] महलन का बसता मोरो ल्याव उठाय।
कलम दवाइत हाथे लाई कागद लाओ उठाय।
राम रमौवल सब सौतन का ऊदल का लिखे परनाम।
घोड़ा बिदुलिया की बुड़्ढा[14] मा की मर गा रजा परमाल।
मैं तो से[15] पूछौं रे ऊदल तैं सुन ले बात हमार।
तोरे[16] नाहर के जीते जी महुबे होय हँसौवा ख्वार[16]।
घाट कालपी भे[17] आवत है रामापति ग्वालियर क्यार।
बाँचै[18] न रामा रे घाटे मा चाहै सात धरै औतार॥

---

१. निरासन से, जिसका समाज में कोई आसन या स्थान हो। निरासी से, जो निराश हो। २. दरवाजे का मैदान ३. साँभर क्षेत्र (पृथ्वीराज रासो में उल्लेख) ४. तिहाई हिस्सा ५. बनाफर ६. सेहरा, स्वँग ७. प्रचलित पाठ में 'परमाले' ८. भुइँघरा, तहखाना, सुरंग ९. बनाफरी में माँझा, बीच १० अच्छे ११. समय १२. गुहारना से, पुकारें १३. प्रचलन में 'जैयो' १४. प्रचलित पाठ में 'बढ़ो' १५. तोसे, तुम, से १६. तेरा, तुम्हारा १७. प्रचलन में 'भे', से या होकर १८. बचे।

सागरी

पाती लिखी मल्हनदे रानी, नैनन बहै नीर की धार।
स्वस्ति श्री आल्हा को लिखि कैं, लिखी बात सब ब्योरेवार।
सात लाख दल लैके महुबा, घेरो आय पिथौरा राय।
तुम बिन बिपदा हम पै पर गई, बेटा हम को होउ सहाय।।
बीतै अवधि डांड़[1] लय पृथ्वी, चाहो मरो बनाफर राय।
बिलखि बिलखि चन्द्रावलि लिखती, बीरन बेंदुल के असवार॥

आन राखियो चंदेले की, तुम बिन कौन सकै निरवार[2]।
पत[3] राखो मल्हना माता की, और राखियो धरम हमार॥
पत गयें फिर पानी ढर जैहै, बिन पानी जीवन धिरकार[4]।
पाती दैके जगनायक कों, हरनागर कों रही सजाय॥
जगनिक साजे घोड़ा साजो, आरति करी मल्हन दे नार।
लाज काज सब हाथ तुमारे, नैया खेय लगैयो पार॥

फाँदि बछेरा पै चढ़ि बैठे, मनियाँ देवि[4] के चरन मनाय।
सर्व देवतन को सुमिरन कर, जगनिक कूच दियो करवाय॥
माहिल पहुँचे पृथीराज पै, बिनती करी सुनाई बात।
उड़न बछेरा हरनागर चढ़, जगनिक चले कनौजै जात॥
घोड़ा छीन लेउ जगनिक सें, सबरे घाट लेउ घिरवाय।
आल्हा-उदल महुबे आहैं, तो[6] फिर बात बनेगी नाँयें॥
इतनी सुनि के पृथीराज ने, चोंड़ा धांधू लिये बुलाय।
आयसु दीनी उन दोउन को, सिगरे घाट लेउ घिरवाय॥
घोड़ा छीनो जगनिक बाँधो, हमरी नजर गुजारो[7] आय।
यह सुनि चोंड़ा धाधू चलिगे, सिगरे घाट लिये घिरवाय॥
जगनिक नदी घाट पर पहुँचे, तब चोंड़ा ने कही पुकार।
चुपकें उतरि परो घोडा सें, जगनिक मानो कही हमार॥
कोड़ा के संग हरनागर को, सोंपो हमें जगम्मन राव।
मुजरा[8] करिकें पृथ्वीराज को, फिर कनवज को चाहो जाव॥

---

१. अर्थदन्ड, हरजाना २. त्राण, बचाव, दूर करना ३. प्रतिष्ठा, इज्जत ४. धिक्कार ५. बुन्देली की हर वर्णना में 'देव' का प्रयोग है, लोक प्रचलन में भी 'देव' कहा जाता है। ६. बुन्देली में 'तो' का प्रयोग होता है, हर वर्णना में यही पाठ है। ७. सामने पेश करो।

अल्हैती

बारह सो चालीस भनि ईश मास बुधवार।
करयो कोप चंदेल पर सांभिर सम्भिरवार[1]॥
सुतिया[2] गांसन गांसो महुबे को जैसी कागा घेर लेंय बाग।
सुतिया गेर लेय गरदन कों जिभिया गेरें बतीसो दांत॥
सूपा करहरा औ पचपहरा दावै उरमिल नदी को घाट।
बारीगढ़ ज्योराहा टीका मऊ ताला दावै दमौरा क्यार॥
कोऊ दल मेलो ताला रिहुलिया कोउ किसवाही ताल की पार।
कोऊ दल मेलो कल्यान सागर पै कोऊ दल बीजानगर की पार॥

कहाँ लौं बरनों मैं चोंड़ा को सबरो दावै किरूनुवा ताल।
उड़ै चिरैया जो महुवे से चोड़ा देत बाज छुड़वाय॥
परी मुसीबत गढ़ महुवे में कोऊ भीतर घुसैं न बाहर जाय॥
को ना जानैं पृथ्वीराज कों मारैं शब्द को वेधीबान।
को ना जानै, लाखन राजा कों मारैं चक्र को वेधो बान॥
सबद ना चूकैं पृथ्वीराज को चूकैं न चक्र कनौजी क्यार।
द्वै बरदान को मुहरा परगा[3] देखो किहि पर राम रिसाय॥
चरखारी के कोठी ताल पै सब दल परयो कनौजो क्यार।
ऊँचा खालों में दल परगे नीचे माँ लगी बजार॥
लगी पलरियाँ[4] हिलवाई कीं औ बनियन की लगीं दुकान।
चक्की मुकेरन की लागी हैं औ भरभूजन झोंक दये भार॥
सिकमीगर खरसान[5] गाड़ दई टूटे फूटे जुड़े हथियार।
कोऊ-कोऊ योधा बद्धी खींचैं कोऊ तेगा पै धरावै बाढ़।
कोऊ अनी झरावरा है भाला कै सूरन बेध जांय पाषान॥
चढ़ी रसुइयां रजपूतन कीं बटुअन चढ़े हिरन के मांस।
खाना खाओ रजपूतन नें छत्री भोजन करें अघाय॥
अपनें अपने तम्बुन पै हों चाले नांच कंचनिन[6] क्यार,
लगी कचहरी ह्वां आल्हा कें बंगला मारी लाग दरबार॥
कुरी छतीसो को अरघा[7] तो बैठे बड़े बड़े मैमार।
खांगर गूजर औ रघुवंशी और धंधेरे बैस पवांर॥
मीरा सय्यद काशीवाले चाचा बनारस का सरदार।
तीनों बैठे हैं बंगला मा आपन लीन्हे पूत परिवार॥
डटी साहबी मुसलमानन के जिनकै मान न बरनी जाय।
अली अलामत औ दरिया खां बेटा खड़े अली सुलतान॥
दीन मुहम्मद वहाँ मेलो तो मौलाबक्स गहे तरवार॥
रोटी बांध लेय बचका मां पानी डार मसक मां लेय।
चलै हरौली रनखेतन मां हिन्दुन खां रोटी खांय न देय॥
बारा लड़के ते सय्यद के औ तेरा ते सगे दमाद।
सेखी बिसर जाय हिन्दुन कें बाजै मुसलमान कें सांग॥
आंखी कनवजियन लागे ना तम्बुआ ना सोवैं लखराज।

---

१. पृथ्वीराज चौहान २. गले का आभूषण, जो गले को पूरी तरह घेरे रहता है। ३ मुकाबला पड़ गया ४. टाट, मोटे कपड़ा आदि से चंदोवे की तरह तान

कर छाया कर लेना ५. पत्थर की वह चक्की, जिस पर तलवार जैसे शस्त्रों की धार तेज की जाती है। ६. वेश्याएँ, नर्तकियाँ ७. अर्धवृत्ताकार पत्थर का आधार।

❖

भोजपुरी

भोजपुरी जनपद में 'आल्हा' का प्रसार इतना अधिक हुआ है कि वह वहाँ के लोकजीवन और साहित्य का एक अंग बन चुका है। उसकी वर्णना को सुन कर या पढ़कर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह बुन्देली का रूपान्तरण है। इसी लिये डा० सत्यव्रत सिन्हा ने लिखा है कि 'अब यह जगनिककृत आल्हखंड सर्वथा भोजपुरिया 'आल्हा' हो गई है।' सिन्हा जी का कथन सही है, पर भोजपुरी जनपद में दो प्रकार की वर्णनाएँ मिलती हैं—एक तो वह जो लोकमुख में आज भी जीवित है और दूसरी वह जो प्राप्त पाठों से रूपान्तरित है। आशय यह है कि प्रथम प्रकार की वर्णना बहुत पहले बुन्देली से रूपान्तरित होकर भोजपुरी में आई होगी और वह धीरे-धीरे और अधिक परिवर्तित होकर भोजपुरी की अपनी बनकर लोकमुख में परम्परित दाय के रूप में जीवित रही होगी, परन्तु दूसरी प्रकार की वर्णना आज भी अपनी प्रथम स्थिति में केवल रूपान्तर मात्र है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय, डा० सत्यव्रत सिन्हा आदि भोजपुरी के विद्वानों ने 'आल्हा' को वीरकथात्मक लोकगाथा माना है। डा० सिन्हा उसे जगनिककृत 'आल्हखंड' से उद्‌भूत कहकर भी असमंजस की स्थिति में हैं क्योंकि वे 'आल्हाखंड' के मूल रूप के बारे में कोई निर्णय नहीं ले सके। एक तरफ तो वे उसे 'पृथ्वीराज रासो' 'बीसलदेव रासो' 'खुमाण रासो' की तरह चारण-गाथा कहते हैं और दूसरी तरफ साहित्यिक कृति मानने में सन्देह करते हैं। क्या कोई कवि रचित गाथा साहित्य से बाहर की वस्तु है, मैं तो यह समझता हूँ कि किसी कवि के द्वारा रची गयी रचना, चाहे वह लोकगाथा हो चाहे लोकगीत, यदि वह कविता है, तो साहित्य का अंग होगी ही। और डा० सिन्हा जी ने यह स्वीकार किया है कि 'आल्हखंड' कवि जगनिक की बुन्देली में रचित स्वतंत्र रचना है, और उसका रचना-काल बारहवीं शताब्दी है। असल में विद्वान समीक्षक वास्तविक 'लोकगाथा' उसी को मानता है, जिसका रचयिता अज्ञात हो, इसीलिए वह जगनिक का नाम केवल जनश्रुति में प्रचलित बताता है और

हस्तलिखित प्रति के अभाव के आधार पर अपनी रक्षा कर लेता है। लोक काव्य के बारे में कुछ भ्रम पश्चिमी विद्वानों की मान्यताओं के अनुसरण के कारण बन गये हैं। लोकगाथा होने के लिए रचनाकार का अस्तित्व या प्रामाणिक या मूल प्रति कोई बाधा नहीं है, शर्त यह है कि उसमें लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति की सभी विशेषताएँ हों और उसे लोक ने अपना लिया हो।

इस जनपद में 'आल्हा' का गायन ज्यादातर वर्षा ऋतु में होता है। शायद इसी ऋतु में अधिक प्रचलन से लोगों में यह विश्वास घर कर गया है कि 'आल्हा' गाने से वर्षा होती है, वरना इसका कारण कृषकों का इस समय अवकाश पाना है। लेकिन इससे 'आल्हा' के प्रति भोजपुरीभाषियों की आत्मीयता सिद्ध होती है। यह विश्वास बुन्देलखंड के कुछ स्थानों में पाया जाता है, रहली (जिला सागर) के एक निवासी ने अपने आस-पास इस विश्वास की दृढ़ता की सूचना दी है। इसी कारण 'आल्हा' आषाढ़ के लगते ही शुरू हो जाता है और दो-तीन माह तक चलता रहता है।

भोजपुरी क्षेत्र में आल्हा-गायकी और स्वरलिपि के अनुसंधान की जरूरत है। गायक या अल्हैत ढोल पर गाते हुए अपने स्वर के आरोह-अवरो के अनुसार उस पर चोट करते हैं। कभी ढोल की एक थाप बीच में देकर गद्य की तरह 'आल्हा' की पंक्तियाँ द्रुत गति से बोली जाती हैं और कभी द्रुत लय में गाई जाती हैं। विषय और भाव के आधार पर गायक का स्वर ऊँचा या धीमा होता रहता है और कुछ पंक्तियाँ द्रुतलय में गाने के बाद एक पंक्ति के अन्त में जोर की आलाप ली जाती है। इससे गायक को साँस लेने का मौका मिल जाता है। साथ ही साथ समस्वर के कारण निर्मित पाठक की एकरसता समाप्त हो जाती है और ताजापन-सा आ जाता है। इस तरह की गायकी का प्रचलन ही सामान्यतः पूरे जनपद में पाया जाता है। यहाँ लोकप्रचलित भोजपुरी रूप का एक अंश प्रस्तुत है—

> नाम रूदल के सुन के सोनवाँ बड़ मंगन[१] होय जाय।
> लौंड़ी[२] लौंड़ी के ललकार मुँगिया लौंड़ी बात मनाव॥
> रात सपनवाँ मे सिव बाबा के सिव पूजन चली बनाय।
> जौने झंपोला।[३] है गहना के कपड़ा कइले[४] आव उठाय॥
> खुलल पेटारा[५] कपड़ा के जिन्हके रास देल लगवाय।
> पेन्हल घाँघरा पच्छिम के मखमल के गोट चढ़ाव॥
> चोलिया।[६] मुसरूफ के जेह[७] में बावन बन्द लगाय।

पोरे पोरे अंगुठी पड़ि गइल सारे चुनरियन के झंझकार[८]।
सोभे नगीना कनगुरिया[९] में जिन्हके हीरा चमके दांत ॥
सात लाख के मँग[१०] टीका है लिलार में लेली लगाय।
जूड़ा खुल गइल पीठन पर जइसे लोटे करियवा नाग ॥
काढ़ दरपनी मुँह देखे सोनवाँ मने मन करे गुमान।
मरजा भइया राजा इंदरमन घरे बहिनी राखे कुआर ॥

बइस[११] हमार बित गइले[१२] नैनागढ़ में रही बार कुआर।
आग लगाइबि एह सूरत में नैना सँवली[१३] नार कुआर ॥

अरे त लागल कचहरी इन्दरमन के बंगला बड़ बड़े बबुआन[१४]।
ओहि समन्तर[१५] लौंड़ी पहुँचल इन्दरमन कन गइल बनाय ॥

आइल राजा बघरूदल सोनवाँ के डोला घिरावलबाय[१६]।
माँगे बिअहवा सोनवाँ के बरियारी[१७] से माँगे बियाह ॥
हवे किछू बूता[१८] जांघन में सोनवाँ के लाव छोड़ाय।
मने मन झांके राजा इन्दरमन बाबू मनेमन करे गुमान ॥

बेर बेर बरजों[१९] सोनवाँ के बहिनी कहलन मनलड मोर[२०]।
पड़ि गयल बीड़ा जाजिम पर बीड़ा पड़ल नौ लाख ॥
है केउ राजा लड़वइया रूदल पर बीड़ा खाय।
चाहड़[२१] काँपे लड़वइया के जिन्हके हिले बतीसों दाँत ॥

केकरा[२२] जियरा है भारी रूदल से जान दियावे जाय।
बीड़ा उठावल जब लहरासिंध कल्ला तरदैल[२३] दबाय ॥

मारू डंका बजवाये लकड़ी बोले जुझान जुझान।
एकी एका[२४] दल बटुरल[२५] जिन्हके दल बावन नबे हजार ॥
बूढ़ मकुना[२६] बियाउर[२७] के गिनती नाहीं जब हाथ के गनती नाहि।
बावन मकुना के खोलवाई राजा सोरह सै दन्तार ॥
नब्बे सौ हाथी के दल में मेंड़ल·उपरे नाग डम्बर[२८] मेंडराय।
चचल परबतिया परबत के लाकर बांध चलै तरवार ॥

चलत बंगाली बंगाला के लोहन में बड़ चंडाल।
चलल मरहट्ठा दक्खिन के पक्का नौ नौ मन के गोला खाय।
नौ सौ तोप चलल सरकारी मँगनी[२९] जोते तेरह हजार ॥

बावन गाड़ी पथरी लादल तिरपन गाड़ी बरूद।
बत्तिस गाड़ो सीसा लद गइल जिन्ह के लँगे लदल तरवार ॥

एक रूदेला एक डेबा पर नब्बे लाख असवार।

---

१. मगन २. दासी ३. आभूपण रखने की बांस की बनी, बुन्देली में चुलिया। ४. कर लो ५. पेटी ६. पेटी ७. जिस ८. झनकार ९. कान का आभूशण १०.-मांग। ११. उम्र १२. बीत गई १३. सांवली १४ बबुआ या बाबू लोग १५.-समय १६. घेर लिया। १७. जबर्दस्ती १८. बल १९. मना करूं २०. मेरा कहना मान लो २१. शायद हाड़। २२. किसका २३. नीचे २४. एक-एक करके २५. इकट्ठा हुआ। २६. बिना दांत का हाथी। २७. गाभिन २८. हाथी की झूल २९. मांगे हुए।

कनौजी

कनौजी जनपद में 'आल्हा' की लोकप्रियता की चर्चा करते हुए डा० सन्तराम अनिल ने लिखा है—'कनौजी में जितने भी 'पंवारे' उपलब्ध होते हैं, उतमें प्रचार, व्यापकता और लोकप्रियता की दृष्टियों से 'आल्हा' का स्थान सर्वोपरि है। यह इतना अधिक गाया जाता है कि इसकी सूक्ष्म घटना की जानकारी सर्वसाधारण को रहती है। महाकाव्यों में चरित-नायक के रूप में राम को जो प्रतिष्ठा मिली है, पंवारों में वही प्रतिष्ठा आल्हा और ऊदल को इस क्षेत्र में मिली है। इससे स्पष्ट है कि अनिल जी 'आल्हा' को 'पंवारा' कहते हैं, लोकगाथा नहीं। उसकी भूल लिपि प्राप्त न होने और केवल लोक-मुख में जीवित रहने के कारण वे उसे विशुद्ध लोककाव्य की कोटि में मानते हैं, फिर भी उनका विश्वास है कि 'चाहे जगनिक ने इसकी रचना की हो या किसी अन्य लोककवि ने, परिस्थिति को देखते हुए ऐसा ही कहा जा सकता है कि इसे बुन्देल खन्ड में ही वहां की क्षेत्रीय भाषा में रचा गया होगा।'

इस जनपद में 'आल्हा' के विभिन्न रूप प्रचलित हैं। जितने गायक हैं, उतने ही रूप। रूपों में थोड़ा या कभी-कभी प्रर्याप्त अंतर होते हुये भी उनकी गाय- की में कोई भिन्नता नहीं है। गेयता या संगीतात्मकता 'आल्हा' का अनि-वार्य तत्व है। उसे 'समस्वर' और 'द्रुतगति' लय में गाया जाता है। कुछ रूढ़ अंश की पुनरावृत्ति करते हुए उसे टेक जैसा प्रयुक्त कर गायक विराम-सा लेता है। जैसे— हिअन की बातें हिअनै छोड़ो और आगे को सुनो हवाल'। सर्वत्र एक ही लय या छंद का प्रयोग किया जाता है। केवल भाव और वस्तु के अनुसार गायक का स्वर करुण या ओजस्वी बन जाता है। यहाँ लोकमुख में

जीवित एक संक्षिप्त अंश उद्धृत है—

जत साँगड़ा[1] है दंगल मैं, जहँ चुचुआत[2] फिरैं असवार।
पैदर के संग पैदर अभिरे,[3] ओ असवारन ते असवार॥
झुके सिपाही महुबे वाले, रहिगओ डेढ़ कदम मैदान।
खेंचि सिरोही लइ छत्रिन ने दल में झुके बाँकुरे ज्वान॥
मिले बखौरा हैं छत्रिन के बलना[4] मिले बछेरन क्यार।
छप-छप छप-छप तेगा बाजें बोले खटक-खटक तरवार॥
ढाल ते ढाल अड़ी ज्वानन की नहियें दाँव सिरोही क्यार।
तीर तुपक तरवार साँगड़ा, ऊपर बरछिन की है मार॥
सुआ[5] सुपारी जइसे काटे, छाँटै मनो तमोली पान।
कटि कटि छोना रजपूतन के गिरिगए पौनन[6] के उनमान।
पिले काँइयाँ हैं दंगल मैं, जेसे खेती लुनै[7] किसान।
जइसे भिड़ता[8] भेड़न पइठें जैसे सिंघ बिदोरै[9] गाय॥
तइसे मलिखे दल में पइठे, हाहाकारी दई मचाय।
मघा की बून्दन गोली बरसैं, ऊपर तीरन की बौछार॥
इक-इक तोपन के मोहरा पै, छय छय[10] ज्वान गरासे[11]जाय।
लये बांसड़ा खल्लासिन ने, दूरि ते दीनी लूक[12] लगाय।
सूरज छिपे भयो अँधियारो, चहुँ दिस कुहरा सो दिखलाय।
गरजत तोप धरन दहलत है, गिरि गए गरभ पखेरून क्यार।
जिहि हाँथी के गोला लागै गहिरी छोड़ि देत चिंघार।
जाइ ऊँट के गोला लागै, दल में देत गाँड़ फैलाय।
गोला लागै जा घोड़ा के, चारों देवै सुम्म पसारि।
गोला लागै जा छत्री के आगे सरग परै दिखलाय।
पैग-पैग[13]पै पैदल गिरि गए ओ दुइ पैग गिरे असवार।
बिसे-बिसे[14]पै हाँथी गिरि गए, छोटे परबत की उनहार[15]।
ऊपर मुरदा नीचे मुरदा, मुरदै मुरदा रहे दिखाय।
भाला डारे हैं लोहू मैं, मानो नाग रहे मन्नाय।
पगियाँ डारी हैं लोहुन मैं, मानो कमल फूल उतरांय।
ढालें कछुआ सी उतरामैं, मछरी जइसी लगैं कटार।
रुन्ड-मुंड से धरती तुपि[16]गई, रक्ता लाल बरन दिखलाय।
जहाँ हरहर हर करैं दिगम्बर, और सिउनांव रटैं भगमान।
सेसनाग विजना[17]लौं कांपैं, इन्दर डोलैं चढ़े विमान॥

सन्मुख सूर समर में जूझैं, ताकौं इन्दर पुरिलइ जांय।
काहर जूझि गिरे धरनी मैं, जमके दूत पकरि लइ जांय।

---

१. बड़ी साँग, भाले की तरह का शस्त्र २. रिसना, रिसते लोहू से सने ३. भिड़े ४. जबड़ा या उसके नीचे गले का भाग ५. तोता ६. रूई की पोनियाँ ७. फसल काटना ८. भेड़िया ९. विदीर्ण करे १०. छः ११. ग्रसना १२. आग की लपट, ज्वाला १३. पग, डग १४. बीघे का बीसवाँ भाग १५. समान १६. भरना १७. पंखा।

अवधी

अवधी जनपद में सावन के महीने में पुरुष वर्ग द्वारा 'आल्हा' गाया जाता है। असाढ़ में फसल बोने के बाद लगभग दो-तीन माह के अवकाश में इस गीत का जोर रहता है। डा० सरोजनी रोहतगी ने उसे 'पंवाड़ा' शैली का लोकगीत माना है और एक दूसरे स्थल पर आल्हा-ऊदल की गाथा भी कहा है। अल्हैत ओजपूर्ण धुन में जोशीले स्वर से इसे गाते हैं। आल्हा-गायकी पर खोज होना चाहिए। वैसे इस क्षेत्र में भी वह इतना लोकप्रिय है कि लोक-जीवन का अनिवार्य अंग सा बन गया है और उसका आल्ह छंद लोककवियों का प्रिय छंद। यहाँ उसकी लोकमुख में अवशिष्ट और अल्हैतों द्वारा गाई जाने वाली दो भिन्न वर्णनाएँ प्रचलित हैं। एक संक्षिप्त अंश उद्धृत है—

कजरी वन के हाथी सजिगे, सजिगे राजस्तानी ऊँट।
सजिगे बर्धा मकनापुर के, सजिगे नये जवाँ रंगरूट॥
सज गईं तोपैं हैं चरखिन पै, सजिगे सेनापति सरदार।
सजगे रथ रब्बा जो लढ़िया, घुंघरू बजैं बैलनवन क्यार।
सजगे मारू बजा वाले, सजगे घोड़न के असवार।
सजगे खच्चर बोझा वाले, सजगे ज्वान छड़ी बरदार॥
चरमर-चरमर पनही बोलै, झण्डा आसमान फहराय।
जंग का बिलला बाँधे योद्धा, रहे मूछैं पै हाथ फिराय॥

ब्रह्मा मलखे आल्हा ऊदल, ढेवा और उदयसिंह राय।
गिरें जाय मल्हना रानी के, पावन पड़े मनै हरषाय ॥
आशिष दीन्हीं रानि मल्हनाने पूजिन भुजा तिलक दे भाल।
बोली मल्हना जावो बेटा, तुम्हरो होय न बांका बाल।
पीठ दिखइयो मत बैरी को, चहै तन धजो-धजो उड़ जाय।
सुनत बतकहीं रानि मल्हना की, कहन लगे उदयसिंह राय ॥

भाद्रकृष्णाष्टमीसौम्ये ब्राह्मनक्षत्रसंयुते ।
प्रादुरासीज्जगन्नाथो देवकयां च महोत्तम: ।। ३३ ।।
श्यामांग: सच पद्माक्ष इंद्रनीलमणिद्युति: ।
विमानानां सहस्राणां प्रकाश समजायत ।। ३४ ।।
विस्मिता जननी तत्र दृष्ट्वा बालं तमद्भुतम् ।
नगरे च महाश्चर्यं जातं सर्वे समाययु: ।। ३५ ।।
उदय: किमहो जातो देवानां सूर्यरूपक: ।
इत्याश्चर्य्यजुजां तेषां वागुवाचाशरीरिणी ।। ३६ ।।
कृष्णांशो भूतले जात: सर्वानन्दप्रदायक: ।
स नाम्नोदयसिंहो हि सर्वशत्रुप्रकाशहा ।। ३७ ।।

—भविष्य पुराण, तृतीय खंड नवम अध्याय ।

[टीप :—भाले ही भविष्य पुराण १२वीं शती कों बहुत बाद रची गई हो, किन्तु वत्सराज (आल्हा-ऊदल के पिता) से कृष्णांश का अवतरण मानना अपने में एक अर्थ रखता है और यह सिद्ध करता है कि संस्कृत के इतिहासकार कवि भी लोक-नायक को पूरा महत्व देते थे । आल्हा या ऊदल का अवतार के रूप में वर्णन लोकश्रद्धा का परिचय तो देता ही है, पंडितवर्ग में अपने महिमामंडित चरित्र की प्रतिष्ठा का साक्षी भी है ।]

आल्हखण्ड की उपजीवी काव्य सम्पदा

सम्पादन एवं टिप्पणी : डा॰ नर्मदा प्रसाद गुप्त

आल्हखण्ड अपनी अपार ऊर्जस्विता, असाधारण प्रभावशालिता और अतिशय प्रेषणीयता के कारण इतना लोकप्रिय हुआ है कि जनसाधारण से लेकर विद्वान साहित्यकार तक उससे प्रेरणा लेते रहे हैं । हर जगह और हर समय । जीवन के हर अनुभव यहाँ तक कि काव्य-रचना में । विचित्र तो यह है कि आल्हखण्ड में न तो कोई विशिष्ट दर्शन है और न कोई परिपक्व वैचारिकता, न कल्पना की विशेष उड़ान है और न भावों की अनोखी संयोजना तथा भाषा और शैली का अनुपम शृंगार भी नहीं, फिर भी उसकी वस्तु और शैली का इतना अनुसरण हुआ है कि उनकी एक परम्परा ही बन गई है । न जाने कितने लोकगीत, प्रबंध, मुक्तक, नाटक, उपन्यास आदि रचे गए हैं, उनकी खोज करना तक एक साहस कार्य है । खासतौर से आदि और मध्यकाल के पुराने ग्रंथों और रचनाओं को मुश्किल यह है कि १३ वीं से १५ वीं शती तक इस बुंदेलखण्ड जनपद में बाहरी आक्रमणों, बिखरे और बिभाजित राज्यों तथा अक्षम और अपर्याप्त सुरक्षा-साधनों के कारण काव्य-सम्पदा सुरक्षित नहीं रह सकी । और १६ वीं शती से लेकर आज तक की कालावधि में भी यहाँ की काव्य-सम्पदा पर कितने डाके डले हैं, उनकी कोई गणना नहीं । फिर भी जो अवशिष्ट और उपलब्ध है, उसका क्रमबद्ध अध्ययन बहुत आवश्यक है ।

उपजीवी काव्य की इतनी दीर्घ परम्परा से स्पष्ट है कि आल्हखण्ड अपने रचना-काल (१२ वीं शती) में ही लोकप्रिय हो गया था और तभी से इस परम्परा का सूत्रपात हुआ होगा । ज्यादातर लोकगीतों, गाथाओं और आख्यानों के रूप में । उसके बाद ही प्रबंध रचे गए, जब रचनाकारों के कानों तक उनकी गूंज पहुँची । प्रबन्धों के साथ-साथ लोककाव्य की भी रचना हुई होगी, पर अभी तक अधिक साहित्य खोज में नहीं मिला । जितना उपलब्ध हो सका, उसकी बानगी के रूप में कुछ अंश संकलित हैं, संक्षिप्त टिप्पणियों

के साथ। कुछ पुराने हैं और कुछ नये, पर उनके क्रमबद्ध अध्ययन से एक लम्बी परम्परा का अनुमान सहज रूप में किया जा सकता है।

● कजरियन की राछरो (१३ वीं-१४ वीं शती)

आल्हा तो पुरुष गीत है, इसलिए नारियाँ उसे नहीं गती। फिर क्या इतनी लोकप्रिय आल्हा की कथा लोकगीतों में नहीं ढली, यह सवाल मेरे मन को बार-बार कचोटता रहा है। बहुत खोजने पर भी कोई ऐसा लोकगीत नहीं मिला, जिसमें कजरियों की लड़ाई का वर्णन हो। अचानक एक राछरा हाथ लगा, जो अपूर्ण सा है, फिर भी उसमें महोबा के चंदेल-चोहानयुद्ध की झलक मिलती है।

आल्हखण्ड में वर्णित यह युद्ध महोबे की लड़ाई या कजरियों की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि सावन में ही पृथ्वीराज चोहान ने चढ़ाई की थी और कजरियाँ खोंटते समय ही युद्ध हुआ था। आल्हा-अदल के कन्नौज से न आने के कारण राजा परमाल (परमर्दिदेव) की बेटी राजकुमारी चन्द्रावलि की कजरियाँ एक दिन दुर्ग में बिलखतीं रही थीं, तब दूसरे दिन भादों में खुँटीं थीं। महोबा में आज भी कजरियाँ सावन की पूर्णिमा के अगले दिन खोंटीं जाती हैं। इस कारण ही लोकगीत में भादों में कजरियाँ सिराने के लिए कहा गया है। भाई बहिन को राय देता है कि इस वर्ष कजरियाँ घर में ही खोंट लो। सोने की बड़ी-बड़ी नांदों में दूध भरा है, उन्हीं में सिरा लो। इस पर बहिन हठ करती है कि वह या तो तालाब के घाट में ही जाएगी, या फिर कजरियाँ सूख जाएंगीं। यहाँ पर चन्द्रावलि की तरह ही बहिन के लिए भी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है और भाई कहता है कि वह कैसी बहिन है जो अपनी हठ से भाई के प्राण जबर्दस्ती लेना चाहती है। इस सावन में तो युद्ध हो रहा है, अगले सावन में तालाब पर ही कजरियाँ खोंटना। बहिन नहीं मानती और फिर हर घर में बुलौआ दिया जाता है। बहिन शृंगार करती है और भाई अपनी ढ़ाल-तलवार लेता है। बागो (केशरिया बागो) रण में जूझने और पाग प्रतिष्ठा का प्रतीक है। भाई तैयार हो जाता है, पर बिना मुँह मीठा किये कैसे जा सकता। सोने के थार में छप्पन प्रकार के व्यजन परोसे जाते हैं, लेकिन भाई एक कोर खाकर ही उठ जाता है। वह कहता है कि वह तो रण में जूझने जा रहा है। कलेवा वे करते हैं, जो कुमारी कन्या ब्याहने जाते है। फिर डोला और चौंडे़ल सजते हैं। जैसे ही कजरियाँ ताल के घाट पर जाती हैं शत्रु सेना टूट पड़ती है। भाई बहिन से कहता है कि अभी लौटना हो, लौट

जाओ। किसी के हाथों न पड़ना, नहीं तो कुल में कलंक लग जाएगा। बहिन भी वीर है, रण से नहीं भागती और भाई भी मैदान में मोर्चे पर लड़ता है, अलग-बगल नहीं। शत्रुओं को मारते-मारते उसकी भुजाएँ थक गई हैं और ललकारते ललकारते आवाज बैठ गई है। भाई की इस वीरता पर ही लोकगीत समाप्त हो जाता है और ऐसा लगता है कि जैसे कुछ छूट गया हो।

इस राछरे में बहिन चंद्रावली की तरह ही हठ करती है। राजा परमाल की पुत्री चंद्रावली ने ही डोला तैयार करवा कर दुर्ग से बाहर निकलने को विवश कर दिया था। उसने अपने भाई ब्रह्मजित से कहा था कि वह तो कजरियाँ खोंटने कीर्तिसागर जाएगी ही और सात सौ डोले सज कर किले के बाहर हो गए थे। इस कारण ब्रह्मजित को विवश होकर सेना के साथ युद्ध के मैदान जाना पड़ा था। इसी वर्णन की पूरी छाया इस गीत पर दिखती है। अंतर इतना है कि इस गीत के बहिन-भाई लोकसामान्य पात्र हैं। मुख्य घटना दोनों में एक सी है। 'आल्हा' में कजरियों भरे डोले तालाब पर पहुँचने के तुरन्त बाद युद्ध शुरू हो जाता है और इस गीत में भी। अवएत यह राछरा अपने मूल रूप में आल्हखण्ड की 'महोबे की लड़ाई' का एक सामान्य लोकचित्र रहा होगा, जो आगे चलकर इस रूप में अवशिष्ट रह गया।

गीत का काल–निर्धारण कठिन है। उसमें पुरानी बुन्देली के कुछ शब्द-गेंवड़े, सिराय, मानिक चौक, वीरा, जूझ, बखरी, घुल्लन, बागो, पाग, गड़अन, डोला, भुज्जें, भाँस आदि उसे बहुत प्राचीन सिद्ध करते हैं और नकीब (अरबी), दुश्मन (फारसी), दाग (फारसी) जैसे शब्द मध्ययुग का। वैसे इसमें पुराने शब्द अधिक हैं। भुज्जें, घुल्लन और बागो तो आदिकाल के हैं, जिसने यह गीत १३वीं १४वीं शती का प्रतीत होता है। पूरा गीत और उसकी दूसरी वर्णनाएँ मिलाने पर काल निर्धारण और भी सही हो सकता है।

इस लघु राछरे में लोकसंस्कृति के कुछ चित्र भी उभर कर आए हैं। कजरियाँ सिराना, वीरा (पान के बीड़ा) लगाना, बागो और पाग धारण करना, घोड़े के सुम्म और पूंछ रचाना और रँगना, डोला और चौंडेल पर बैठना आदि सब संस्कृति के प्राचीन चिह्न हैं। भाई का बहिन का कजरियों के लिए शत्रु से लड़ना बुन्देली लोकसंस्कृति का पुराना आदर्श है। कजरियाँ बोना, खोंटने के पहले चौक में रखना, झूला में झुलाना, पान के बीड़े लगा-कर रखना, (ताकि जो उसे उठाएगा, वह उनकी रक्षा का पूरा उत्तरदायित्व

लेगा और उसके लिए युद्ध करेगा।, भाई के जाने के पूर्व उनका मुंह मीठा करना, डोला पर कजरियां ले जाना, तालाब के घाट पर खोंटना, उन्हें देना (शत्रु लेने का अधिकारी नहीं होता, इस कारण उनकी रक्षा की जाती है) सारी क्रियाएँ लोकसंस्कृति का अंग रही हैं। इस दृष्टि से भी यह गीत बहुत पुराना सिद्ध होता है।

अधिक विश्लेषण की गुंजाइश नहीं, राछरे की प्राप्त वर्णना प्रस्तुत है ताकि वह लुप्त न हो जाय और 'आल्हा' या आल्हखण्ड की प्रामाणिक गवाही भी दे सके—

> साउन महीना नीको लगै, अरे, गॅवड़े[१] रहे हरयाय।
> साउन में कजरियाँ बै[२] दईं, भादों में दैहें सिराय॥
> ऐसो है कोउ भइया धरमी, बहिना खों लओ है बुलाय
> आसों के साउन घर के करो, आगे के दैहों कराय
> सोने की नांदें दूधन भरीं, सो कजरियाँ लेव सिराय
> कै जैहैं तला के पार[३] भैया, कै जैहैं कजरियाँ सूख
> धरीं कजरियाँ मानिक[४] चौक में, बीरा[५] लये हैं लगाय
> कैसी री बहिना हटें[५] परी है, बरबस[६] लेत पिरान
> आसों के साउना[७] जूझा[८] के हैं, आगे के दैहों कराय
> नउनिया बुलाव री बखरी में, बुलौवा देव कराय
> दौरी दौरी नउनिया फिरै, घर घर फिरै नकीब
> कौंना धरी मोरी माथे की बिंदिया कौंना धरे सिंगार
> डबियन धरी है माथे की बिंदिया डब्बन धरे सिंगार
> कौंना धरी है छुरी कटरिया, कौंना धरी गेंड़ा ढ़ाल
> कौनन टॅगी है छुरी कटरिया, घुल्लन[९] टॅगी है ढ़ाल
> कौंना धरो है सुरसी को बागो, कौंना निरमोला पाग[१०]
> मढ़ा[११] धरो है सुरसी को बागो, अटरियन धरी है पाग
> झूला में कजरियाँ झुलाउत, भइया खाँ लओ है बुलाय
> छप्पन भोजन करो मोरे भइया, कजरियाँ देव सिरवा
> सोने के थारन भोजन परोसो, रूपे के गड़अन[१२] नीर
> एक कौर भैया दै लओ, दूजो दओ सरकाय
> कै थारन माछी गिरी कै टूटो सिर को बार
> नै तो भइया माछी गिरी नै टूटो सिर को बार
> कुंवर कलेऊ बे करैं जे कुंवारी ब्याहन जांय
> हम कलेऊ का करैं जो रन जूझन खों जांय
> रचाये पांव पुड़िया के पूंछा रंगी सराबोर
> बारन बारन मोंती गोये किसवारन[१३] हीरा लाल
> बिटियन के डोला[१४] सजे बहुअन की चौंडेल[१५]
> जेठी पकर लई ताजमों[१६] लुहरी घोड़ा की बाग
> जेठी खों पठैयों मायकें लुहरी को तुमइपै भार
> धरीं कजरियाँ तला के पारै[१७] बिटियाँ आन सिराव
> टूटी फौजें दुश्मन की बहिन भगनें होय भग जाव
> हौंत न परियो काऊ के लग जैहै कुल में दाग
> तुपकन के कंदुआ[१८] लगे मूंडन के गंजे पहार
> बगती लड़े डडियन छिड़ियन[१९] मंगदा लड़े मैदान
> मारत मारत भुजें[२०] रै गईं ललकारत रै गई भांस[२१]

---

१. बस्ती से सटा हुआ चारों ओर का भूभाग २. बो दी हैं ३. तालाब के घाट ४. माणिक्यों से जुरो चौक ५. पान के बीड़ा ६. जबर्दस्ती ७. सावन ८. लड़ाई, ९. खूंटेमें, जिनका सिरा अश्वमुखी हो। १०. पाग या पगड़ी, जो प्रतिष्ठा की प्रतीक होने से अमोल या अमूल्य होती है। ११. अन्दर की कोठरी १२. लोटे १३. केशों में १४. नारियों की पालकीनुमा सवारी, जिसे कहार ढ़ोते हैं। १५. वह डोला जिस पर पर्दा पड़ा हो १६. घोड़े के मुहाने का सबसे ऊपरी भाग १७. पार या घाट में १८. ढेर १९. गली-गली २०. भुजाएँ २१. आवाज थक गई।

● महोबा रासो (१५२६ ई० के लगभग)

परमाल रासो का सम्पादन बाबू श्यामसुन्दर दास ने दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया है, परन्तु उसका पाठ-निर्धारण ठीक नहीं है। बुन्देलखण्ड में उसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं और इसी को अधिकांश लोग जगनिक का असली आल्हखन्ड मानते हैं। सभी में चंदकृत पृथ्वीराज रासो नाम लिखा मिलता है, किन्तु बाबू जी ने इसका नाम परमाल रासो दिया है। वस्तुतः दोनों नाम उचित नहीं है क्योंकि कथा का नायकत्व आल्हा-ऊदल के हाथ में है। ग्रन्थ के अंत में 'समय महोबा भमन करि' से इसका नाम 'महोबा समय' उचित कहा जा सकता है, पर उससे पृथ्वीराज

रासो के 'महोबा समय' का बोध होता और वह भ्रम में डालता है। इसलिये उसका 'महोबा रासो' नाम सर्वथा उचित है। बुन्देलखन्ड में करहिया को रायसो, बाघाइट को रायसो, झांसी को राइसो जैसे स्थलनामधारी कई रासो ग्रन्थ मिलते हैं।

महोबा रासो का रचना-काल अज्ञात है। बाबूश्यामसुन्दर दास जी ने विक्रम की सत्रहवीं-अठारवीं शती और डा० शम्भूनाथ सिंह ने सं० १८४९ वि० निर्धारित किया है, लेकिन ग्रन्थ में 'राज छोड़ि तोंवर नृपति' से तोमर-नरेशों का राज्य समाप्त होने का और 'धुरपद इक्क गाइव' से ध्रुपद के आविष्कार के बाद का संकेत मिलता है, जिनसे उसका रचनाकाल १५२६ ई० या उसके आसपास ठहरता है। रचनाकार अज्ञात है, चंद या जगनिक मानना उचित नहीं है पर यह निश्चित है कि बुन्देली भाषारूप और महोबा के स्थलों के विवरणों से वह महोबा के आसपास का निवासी कोई तीसरा कवि है। अगर उसका रचयिता चंद होता, तो उसमें आल्हा-ऊदल की इतनी प्रमुखता न होती और यदि जगनिक होता, तो उसमें ध्रुपद और तोमरों का उललेख न किया जाता।

इस प्रबन्ध में दो प्रमुख राष्ट्रीय युद्धों का वर्णन है—एक चंदेल और चौहान युद्ध और दूसरा आल्हा का यवनों से युद्ध। दोनों की पुष्टि इतिहास से होती है। पात्र ऐतिहासिक हैं और कल्पित भी। प्रमुख रस वीर है, गौण रूप में शृङ्गार, करुण, शान्त आदि रसों की अभिव्यक्ति हुई है। शिल्प-विधान परम्परित होता हुआ भी कहीं-कहीं नवीन है। संवादों में नाटकीयता और दर्पोक्तियों में ओजमयता कवि के कौशल को व्यक्त करती है। भाषा में डिंगल का रंग भरने की परम्परित प्रवृति है, पर उसका का मूल रूप बुन्देली है। इस तरह महोबा रासो एक वृहदाकार प्रबन्ध है।

बुन्देलखन्ड की रासो काव्य-परम्परा और विशेष रूप में छन्दवैविध्यपरक रासो काव्य-धारा के विकास में महोबा रासो का योगदान महत्वपूर्ण है क्योंकि बाद के रासो ग्रंथों पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। आवश्यकता है उसके पाठ-निर्धारण और सम्पादन की। यहाँ उसका अल्पांश बानगी के रूप में प्रस्तुत है—

(जगनक कनवंजपुर गमन खंड)

अन्तहपुर[1] मल्हन सहित, वैठि नृपति चित लाय।
जगनक वर कविराज कहँ, लिन्निब अन्त बुलाय ॥६०॥

चौपही।

बुल्लत प्रगट भूप ये बैनह[2]। मो मानस बिन आल्ह न चैनह।
पंच अहन गह कनवज जावहु। जसरथ-नन्दन वेगि बुलावहु ॥६१॥

दोहा।

भूपति के ये वचन सुनि, चित्त रोष अति ल्याइ।
वत्त परस्पर बुद्धिवर, बुल्लिव जगनक राई ॥६२॥

पद्धरी।

उच्चरहि बैन जगन्निक राय। पड़िहार पंच दिज्जै पठाय ॥
चुगली कुवंत्त[3] स्रुति लिन्न डारि। ग्रीषम सुधर्म दिन्नत निकारी ।६३।
अब कहत ताहि ल्यावो मनाय। कटु बचन बान लग्गे अघाय।
हय बाल पंच दिज्जै मँगाय। नातर महोब तजि नगर जाय ॥६४॥
ऐसी कुबत्त नृप कर्ण दीन। आल्हन मनाय अब मत्त कीन ॥
कोपति अनन्तरो रहि सुकोन। यह कहि सुवत्त जग भये मोन ॥६५॥

दोहा।

अस्रु बरसि अति रुदन करि, गये मल्हन दे पाय।
जगनिक मन्त्रनि कील करि, लैहै सेस रिझाय ॥६६॥
करुना रसजग मानि मन, स्वामि धर्म मन दीन।
आल्हा मनावन कर प्रवृति,करि विचार सो लीन ॥६७॥
मल्हन दे पांइन परिग, उठे जगन अतुराय।
कै लै आऊँ आल्ह कै, प्रान तजौं सुखपाय ॥६८॥
सहुगायत[4] दिय आल्ह कहँ, आपु नृपति सुखपाय।
सोभित बानी राय को, लिन्नब भूप मँगाय ॥६९॥
दिन्नव पान प्रसन्न मन, श्री भूपति चित लाय।
सीख दइय मग चढ़ न कौं, हरनागरो[5] मँगाय ॥७०॥

चौपही।

लै दुजराज चले कवि जानिय। सीख दई परमाल सुमानिया ॥
हिरन आगरे[6] पर चढ़ि लिन्नब,जगनक भाट[7] बिदा करि दिन्नब ॥७१॥

पायाकुल।

अल्हन[8] कौं दिय अस्व सु मुत्तियमाल है।
दइय कलँग्गिय सीस जराइन जाल है ॥
दीन जरी बहुमोल सु अंसुक चार है।
माछुल[9] कौं दिय मल्हन[10] मुत्तिय हार है ॥७२॥

दीन जराइ कि मढ़िठया[11]देवल रानि कौ।
ईंदन[12]को दिय मुक्त धरै बहु पानि कौ॥
ऊदन कौ इक अस्व जवाहिर ठान है।
जीन अमोल सुमान बिसाल कमान है॥७३॥

दोहा।

कंकन दये जराय के मुक्तमाल पहिराय।
कनवज[13] को परमाल नृप, बिदा किये कविराय॥७४॥

सोरठा।

मल्हन कहिय सन्देस, बेगि बहुरि जग आइयव।
नागर लूटत देस, भूमहीन चन्देल सब॥७५॥

दोहा

जा दिन आल्हन पुत्र हुव, नची अजिर[14]महं आयं।
देवल दे हारूयौ बचन, सो तुम सर्व सुनाय॥७६॥
धनि याकी सिख मानि कै, मनिया[15] के पग लाय।
हूजौ देव प्रसन्न तुम, जातें अल्हन आय॥७७॥
मनिया सुर के चरन परि बिनय कीन कविराय।
जो आवैं जसराज सुत, तो तुव दरस बताय॥७८॥
मनिया दे दरसन दये, स्वामि बसन धरि गात।
जगनक राय पधारिये, आवहि आल्हन जात॥७९॥
मनिया दे के बचन सुनि, चले जगन सिर नाय।
हिरन आगरे बैठि कं, कनवज दिस कहं जाय॥८०॥

---

१. अंतःपुर २. बैन या वचन ३. कुबात ४. सोगात, भेंट ५. हरनागर अश्व ६. हरनागर (अश्व) से निसृत ७. जगनिक भाट, आल्हखन्ड का रचयिता ८. आल्हा ९. मछला, आल्हा की पत्नी १० चंदेलनरेश परमर्दिदेव (लोक प्रसिद्ध परमाल) की पटरानी ११. विशेष धातु की जड़ाऊ चूड़ियाँ, जो मध्ययुग के विशिष्ट आभूषण थीं। १२. आल्हा का पुत्र १३. कनवज, पाठ अशुद्ध है। १४. आंगन १५. मनियाँ देव, जिन्हें इतिहासकार वी० स्मिथ ने गोंड़ों का देवता माना है।

आल्ह राइछौ (१७ वीं शती)

आल्ह राइछौ का रचयिता और रचनाकाल अज्ञात है। पं० गौरी शंकर द्विवेदी ने उसे जगनिककृत मान लिया है, पर भाषारूप से वह १७ वीं शती की कृति प्रतीत होती है। हस्तलिखित प्रति केवल प्रतिलिपि-काल—कातिक बदि ३० सोमे सम्वत १९१० वि० दिया गया है।

इस लघु लोक प्रबन्ध में ४३८ छन्दों में आल्हा के जीवन का एक खण्डचित्र अंकित किया गया है। कवि ने आल्हा-ऊदल के महोबा से निष्कासन को आधिकारिक कथा के रूप में ग्रहण किया है और कारणस्वरूप माहिल की चुगली, परिणाम स्वरूप पृथ्वीराज की महोबा पर चढ़ाई, जगनिक का महारानी मल्हन दे का पत्र लेकर कन्नौज जाना और आल्ह-ऊदल को लेकर महोबा आना प्रासंगिक कथाएँ हैं। सम्भव है कि जगनिक के आल्ह-मनउआ के आधार पर इसकी रचना की गयी हो। कथा के इस लघु आयाम ने उसे प्रवाह और अन्विति प्रदान की है, पर आल्हखण्ड जैसी ओजमयता और उदात्तता नहीं आ पाई। आल्ह राइछौ की प्रमुख विशेषता है-लोकवातावरण के चित्रों से युक्त लोकभावों की निश्छल अभिव्यक्ति, बुन्देली का यह लाड़ला रासो गीतपरक रासो काव्यधारा का अग्रणी ग्रन्थ सिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहींहै। यहाँ कुछ छन्द दिये जा रहे हैं—

सुन बनरस के राय, मंडरिक[1] हंस-हंस के कहै।
जस अपजस रहि जाय, सदा नहीं कोऊ अमर॥
सिरोपाय[2] मँगवाय, सौंप्यो चौंड़ाराय के।
हाथी दियो चढ़ाय, पान दिये कीन्ही बिदा॥
दीन्हें दस असवार हैं, चौड़ा गुहिने जाय।
गिरवर लौं पहुंचाइयो, जहां पिथौरा राय॥

चौड़ा की कीन्हीं बिदा, बैठो है दरबार।
कूच किते को कीजिये, लागो हिन बिचार॥
कहो बनाफर राय, जमकै गिरवर टोडी।
पकर पिथौरे लेव, आन इन हमरी गोंड़ी[3]॥
लढ़ आयो चौहान, लगो माहिल की बातन।
हरवर[4] कीजे कूच, भाग जै है अधरतन॥
तब जगनिक बिनती करी, अपनो राय जुहारिये।
अब आयसु लै परमाल की, फिर सम्हर[5] दल मारिये॥

यहो मतो ठहरान, कूच महोबै कों करिये।
लै राजा को पान, पुन चोहानन मारिये ॥

१. मंडलीक, मंडल का राजा २. सिरोपाव, सिर से पैर तक का पहनावा ३. गोड़, पाँव ४. जल्दी ५. पृथ्वीराज का सैन्य दल।

जगतराज-दिग्विजय (१७२२-२३ ई०)

कवि हरिकेश कृत जगतराज-दिग्विजय वीररस प्रधान चरित काव्य है, जो अभी तक उपेक्षित रहा है इसका विस्तृत परिचय मैंने एक शोधलेख़ (बाबू-वृन्दावन दास अभिनन्दन-ग्रन्थ में प्रकाशित) में दिया है। हरिकेश जी सेंवढ़ा (जिला दतिया) निवासी विप्र थे और पन्ना नरेश महाराज छत्रसाल तथा जैतपुर नरेश जगतराज के आश्रित थे। उनके एक 'लड़ाई काव्य'-अब्दुल समद की लड़ाई में छत्रसाल के एक युद्ध का वर्णन है और वृहत प्रबन्ध जगतराज-दिग्विजय में जगतराज और दलेल खाँ के बीच ऐतिहामिक युद्ध की कथा के साथ अन्य छोटे-बड़े युद्धों के संक्षिप्त विवरण हैं। दोनों ग्रन्थों की साक्ष्य से कवि का कविता-काल १८ वीं शती का पूर्वार्द्ध ठहरता है। जगतराज-दिग्विजय में चन्देलों और बनाफरों के विवरण के साथ आल्हा-ऊदल सम्बन्धी कुछ छन्द भी हैं, उनमें से तीन यहां प्रस्तुत हैं—

चिन्तामणि ससीपाल कृपाचन्द्र सभाचन्द्र,
मकरंद महाबली अक्रूर अक्षयराज।
मणिकंठ सनकंठ ताराचन्द्र दीपचन्द्र,
सोडर अक्रूर भओ वत्सराज दसराज।
दसराज जू कें भे सुपुत्र युग महाबली,
आल्हा औ ऊदल चन्देल के सुलभ काज।
आल्हा कें ईंदल भो ऊदल कें भो नरेन्द्र,
पुत्र भये नामी यों सनामीं भो चन्देलराज।

वह्नि वर दै दियो बालक अतालिक सो,
चितामणि ख्यात नाम चितामणि वरन मैं।
वंस प्रति वंस याको ससीवंस संग चलै,
नाम कहो बन्दि देव बन्हफर धरनि में।

चन्द्रब्रह्म भूप भयो महि पै अनूप ताको,
बन्हाफर बन्हि तुल्य ओप है उरन में।
ताके वंस सूरो स्वामिधर्म में सहूरो महा —
नामी भयो आल्हा आला जगत के नरन में॥

ऊदल ऊदल मारि प्रचारि करी बहु रार महारन ऊदल।
सूर महा लखि सूर कहैं करनी भरपूर सु भुरहि भूतल।
आल्ह करी परमाल लखी करवालहि ब्रह्महि जीत हितू तल।
बीर बली समरत्थ कहैं हरिकेश दुहू दल ऊदल ऊदल॥

० वीर-विलास (१७४१ ई०)

कवि ज्ञानी जू की रचना वीर-विलास वीर रस की प्रौढ़ कृति है, परन्तु इसे अभी तक किसी साहित्येतिहास में स्थान नहीं मिल सका है। केवल डा० रामकुमार वर्मा द्वारा सम्पादित हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची में इसका संक्षिप्त विवरण मिलता है, जिसमें रचयिता अज्ञात बताया गया है, जबकि कवि की उसी कृति में रचयिता के नाम और निवास का उल्लेख है। ज्ञानी जू ने लिखा है कि वे जलालपुर (जिला हमीरपुर) के खेरे खड़वत खूब के निवासी हैं, जिसके उत्तर में कलिगंगा बेतवा बहती है। इससे स्पष्ट है कि यह ग्राम खेड़ी होगा, जो जलालपुर से सटा हुआ है। कवि ने एक दोहे में ग्रन्थ की रचना-तिथि सावन बदी दोज सं० १७९८ बताई है।

डा० रामकुमार वर्मा ने वीर-विलास को संभवतः नाम के कारण वीर चरितकाव्य माना है, पर उसमें दो प्रसिद्ध युद्धों का वर्णन है और कवि 'भयो दरेरो कौन विध नदी बेतवै तीर' के द्वारा यही संकेत करता है कि वह घाटना परक वीर प्रबन्ध ही लिख रहा है। ग्रन्थ दो भागों में विभाजित है— पहले भाग में आल्हा-मनौआ और बेतवा के युद्ध का वर्णन और दूसरे में बेला का गौना और सती होने की कथा है। कथावस्तु आल्हखंड की उपजीवी है, किन्तु वह शास्त्रीय प्रबन्ध के साँचे में ढलकर परिनिष्ठित हो गई है। कवि की कुशलता इस बात में है कि प्रबन्धात्मक रूढ़ियों में फँसकर भी उसका लोकरूप क्षतविक्षत नहीं हुआ है। लोकस्वाभाविक सहज प्रकृति को केन्द्र में रखने से उसके चरित्र भी सजीव बन पड़े हैं। नारी पात्रों में कोमलता, मधुरता और भावुकता के साथ ओजपूर्ण दृढ़ता का अनोखा समन्वय है। कवि को भावुक

रचनों की अच्छी पहचान है। कहीं वह संचारियों से पुष्ट स्थायी भाव की शास्त्रीय रूप बना करता है, तो कहीं लघु प्रसंगों में सहज लोकभावों की अभिव्यक्ति। इसी प्रकार वह एक ओर परिनिष्ठित शब्दों का धनी है, तो दूसरी ओर लोक शब्दों का। संक्षेप में, प्रबन्ध-परम्परा की कड़ी में वीर-विलास छत्रप्रकाश, दिग्विजय की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। यहाँ उसके कुछ छन्द उद्धृत हैं—

कीरत सागर ताल, मल्हना पहुँचावन गई।
अँसुवन भये दृग लाल, आल्हे लावहु हाल ही॥
कहत मल्हन दे रानि, कीरत सागर आम तर।
दैस लेत चौहान, जबनिक हरवर आइयो॥

•

चमू चहूँ दिस आन घोर चोहानन लीन्हीं।
दुहू बखिलवा फिरो हाँक देवै ने दीन्हीं।
फिर कोऊ नहिं सहत गये मोती को पानी।
लेहु बिजुरिया ढाल धान सम्हर रजधानी॥

•

कच्छी केअगवार तुहै न लागै अच्छी।
मोह देव तलवार ढ़ाल औ सांग बरच्छी।
मुख पर घूंघट घाल पाँव में बिछिया धारो।
पाँव महावर देव नावनै वेग प्रचारो।
सब लोहो धर देव अंग सोनै मढ़ी।
युद्ध करन मैं जाँव घोड़ा चढ़ डोला चढ़ी।

•

प्रथीराज दरेरो (१८वीं शती)

श्री इलाशंकर गुहा, आकाशवाणी, छतरपुर के द्वारा मुझे इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, किन्तु उसमें केवल मलखान-मोहिनी के विवाह की ही कथा वर्णित है। ग्रन्थ के नामकरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें पृथ्वीराज चौहान और परमर्दिदेव चंदेल के बीच प्रसिद्ध युद्ध का आख्यान ग्रहण किया गया होगा, लेकिन पूरे ग्रन्थ में अनुमानत: एक हजार पृष्ठों में मलखान और मोहिनी के विवाह का एक ही प्रसंग मुख्य कथावस्तु है। इसलिए ग्रन्थ के हर पृष्ठ पर मलखान विवाह अंकित है। इस आधार

पर पृथ्वीराज दरेरो एक विराटकार महाकाव्य होना चाहिए। यह भी संभव है कि रचयिता ने केवल 'मलखान विवाह' ही रचा हो, फिर ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध में एक प्रश्नचिह्न लग जाता है। कवि ने या तो पूरा ग्रन्थ रचा होगा या उसकी योजना ऐसे महाकाव्य रचने की रही होगी। बहरहाल पूरी खोज के ही बाद कोई निर्णय लिया जा सकता है।

प्राप्त प्रति में पूर्व के १०० पृष्ठ नहीं है और अन्त में ७८० पृष्ठ तक वह अपूर्ण है। बीच में ७९७-७९८ पृष्ठ का एक टुकड़ा भी है। इस आधार पर ८०० पृष्ठों का अनुमान कठिन नहीं है। ग्रन्थ के अध्यायों की अन्त की पुष्पिकाओं में रचयिता का नाम, ग्रन्थ का नाम और कथा का विषय दिया गया है। उदाहरण के लिए ९वें अध्याय की पुष्पिका इस प्रकार है—'इते श्री कवि चंद विरंचतायां प्रथीराज दरेरो मलखान-मोहिनी विवाहे चतुरथे जुध्धे रांना पमार बध दो दिन संग्रामे जगनायक विजय चंद्रकवि चहुवांन सँवादे वर्ननोनाम नवमो अध्यावहु ९॥'

पुष्पिकाओं एवं ग्रन्थ के अनेक छन्दों में रचयिता का नाम 'चंद' ही दिया गया है, कहीं-कहीं 'चन्द्र' और 'चंद वरदाय' भी आया है, लेकिन कृति की भाषा मध्ययुग की बुन्देली है और इस दृष्टि से उसका रचयिता कोई बुन्देली कवि होना चाहिए। 'महोबा रासो' की हस्तलिखित प्रतियों में भी 'चंद' कवि का नाम मिलता है, यहाँ तक कि उसे जनपद के लोक 'चंदरायसो' के नाम से पुकारते हैं (कुछ उसे असली आल्हा या आल्हखंड समझते है)। असल में पहले के कृतिकार अपने नाम को गुप्त ही रखना चाहते थे, इसलिए वे उसके स्थान पर या तो आश्रयदाता का या किसी प्रसिद्ध कवि का नाम अंकित कर दिया करते थे। उदाहरण के लिए पं० मोहनदास मिश्र कृत 'कृष्णचन्द्रिका' में उनके आश्रयदाता चंदेरीनरेश 'रामचन्द्र' का नाम आया है। कहा नहीं जा सकता कि कितने कवियों ने अपने आश्रयदाता नरेशों का नाम ही उजागर किया हो। इसी तरह 'तुलसी' और 'सूर' का छाप डालकर अनेक पद या भजन रचे गये हैं, 'ईसुरी' के नाम पर हजारों फागें प्रचलित है और चंद वरदाई के नाम पर रायसो, कटक और समै। इस कारण कृति को रचयिता का नाम अज्ञात ही रह गया है। सम्भव है कि पूर्ण कृति प्राप्त होने पर पता लग सके।

कृति का रचना-काल अज्ञात है। शब्दों के दित्त से भाषा में पुरानापन लगता है, पर रासो-ग्रन्थों की इस तरह की प्रवृत्ति १८वीं शती तक अधिक प्रचलित रही। बंगला और दीमान शब्द भी बाद के लगते है। पच्चासवें

अध्याय में बाद्यों के नाम आये है—

बाजन तबल तारिय मंजीर। मुहचंग ढोल मुहवर जभीर ॥
सहनाय संख धुन सुर समार। मिरदंग तुंग आदिक अपार ॥[1]

इन बाद्यों में मुहचंग १८वी शती तक प्रचलन में था। इससे इस ग्रन्थ की रचना १७वीं-१८वी में शती में अनुमित की जा सकती है।

दरेरो का बुन्देली अर्थ धावा या आक्रमण है और युद्ध के लिए भी उसका प्रयोग हुआ है। इस प्रबन्ध मेंपृथ्वीराज चौहान के चंदेलनरेश परमर्दिदेव पर आक्रमण या युद्ध का वर्णन नहीं है, परन्तु मलखान और मोहिनी के विवाह में २२वें अध्याय तक ही २० युद्धों का चित्रण किया गया है। युद्ध-वर्णन की कुछ विशेषताएं ऐसी है, जो उसे अन्य ग्रन्थों से अलग कर देती हैं। जैसे राजा परमाल का युद्ध में जाना, माहिल का बिना चुगली किये या बाधा डाले आल्हा-ऊदल के साथ रहना और वर्णनों में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति न होना। अतिशयता की पुरानी प्रवृत्ति सेना, मृतकों आदि की संख्या में हर जगह है, किन्तु सभी वर्णन ओजपूर्ण हैं। २३वें अध्याय में आल्हा का बीड़ा न लेने से और मलखान के बर देश में नेतृत्व से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि मलखान को ही नायकत्व प्रदान करना चाहता है। उसने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि कोई भी बीर अगुवाई नहीं करता। बहरहाल रचनाकार का कलाकौशल भी इस कृति को १७-१८वी शती का सिद्ध करता है।

इस ग्रन्थ की समीक्षा और कभी की जाएगी, यहाँ उसका एक संक्षिप्त अंश बानगी के रूप में दिया जा रहा है—

भा चिता रन मै जुरो होत सैन को नास।
जासै आल[2] विचार मन गधा[3] जुध्द्य परगास ॥७८॥
समर छेह आलंन करो दीनी दूत पठाय।
दुंद जुध्ध कों छंडिअैं गधा जुध्ध ठहिराय ॥७९॥

चौपही—तब आलंनसी[4] दूत पठावो। सो चल चिता[5] के ढिग आवो ॥
कर प्रनाम बोलो कर जोरी। बिनय बेग सुनिअैं अब मोरी ॥८०॥
दुंद समर तज बिनय हमारी। गधा जुध्ध चल कीजे रारी ॥
सो सुन चिता अत सुक[6] माना। कह तुम जाव करब घमसांना ॥८१॥
दुहु दल पंतबंद[7] कर ठांडे। धरमधुरींन धीरु रन गाडे ॥
भूप बराती सब रहि संगा। गहि गहि कंगल[8] चडे तुरंगा ॥८२॥
तब तिन निज निज पील बडाऐ। दुहु दल बीच बीर तब आऐ ॥
बतरत[9] भऐ गधा कर लींनै। धीरधुरींन बीर रसभींनै ॥८३॥

गहि गुरु गधा कंध पर धारो। धींम चाल आऐ मतुवारो।
यम राजत बिय[10] बीर बिसाला। जरासिंधु जिम करन कराला ॥८४॥
समर भूंम आऐ तब तीरा। कर प्रनाम भुज गहि गहि बीरा ॥
कुसल छेम पूछी हरषाई। बिछुरे बंध मिले जिम आई ॥८५॥

दोहा—तब चितामन उच्चरी[11] सुनो बनाफर राय।
जो कुछ करनै होय सो कहो बीर चितुलाय ॥८६॥

चौपही—सुनत आल तब यह बिध कहिऊ। धीर पुरस तुम जांनत सबऊ ॥
सिवा संभु आराधंन करकें। लींनै बर इछिछत मुद भरकैं ॥८७॥
हौ तुम धरम धीर गुन गाहक। अधरम पंथ चलंन के दाहक ॥
जेठ पुत्र अधपत भुप होई। कहत बेद जांनत सब कोई ॥८८॥
हौ जुवराज आय यह थल मै। समर धीर साहस बर बल मै ॥
तासैं तुमसौं कहि अत बचना। मैटहु सकल समर की रचना ॥८९॥
आंनद होय सुनत सब काहू। रुच सैं कीजे बिहिन बिबाहू ॥
तुमरो करो होत सब भाई। बिध सौं देव पितहि समुझाई ॥९०॥
बचन मानहै तुय पितुमाता। सहित सैन जुत सांवत भ्राता ॥
तुमसे श्रेष्ट न कुय दल मांहीं। आयस भंग करहि को याहीं ॥९१॥
तात मात सैं बिनय करीजे। दुंद निबार महा जस लीजे ॥
अस कहि आल मौन सो भयऊ। बिहिस बचंन चितामन कहिऊ ॥९२॥

दोहा—सुनत आल के नीतजुत बचन बिसैंनै बीर ॥
कहत भवो रिस छंड कैं चितामन मत धीर ॥९३॥

तोटक—तुम सत्त बनाफर बत्त कही। यह मै कछु बीर न भेद सही ॥
जब भूप बिबाह रचो भगनी। दरबार समूहि लगो रचनी ॥९४॥

टिप्पणी :—१. तबल, ताल, मुहचंग, ढोल, शंख, मृदंग, महुअर आदि प्राचीन बाद्य थे। शहनाई मध्ययुग में प्रचलित हुआ। मुहचंग त्रिशूल जैसे आकार का धातुनिर्मित और फूंक से बजाया जाने वाला बाजा है। २. आल्हा ३. गदा ४. आल्हा ५. एक विशेष पात्र या या चरित्र ६. सुख ७. पंक्तिबद्ध ८-९. बातों में लीन १० दोनो ११. उच्चरी=बोला

● आल्हा (१६वीं शती का उत्तरार्द्ध)

पुंछी-करगवाँ निवासी शिवदयाल कमरिया द्वारा रचित आल्हा का उल्लेख राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने एक संस्मरण में किया था; जिससे उसकी लोकप्रियता सिद्ध होती है। कवि के पिता का नाम श्री पारीछत कमरिया और माता का अमानबाई था। उनकी कुछ पंक्तियों से प्रकट है कि विशेष पढ़े-लिखे न थे और अभ्यास से उन्होंने संगीत और काव्यशास्त्र की विद्या प्राप्त की थी। पहले 'पजन' उपनाम से लोकगीत, भजे और फागें लिखा करते थे, बाद में रामचरित मानस से प्रेरणा लेकर आल्हा की रचना की, जिसने उन्हें उस क्षेत्र में जनप्रिय बना दिया और लोग उन्हें सम्मान से शिवू दा कहने लगे। कहा जाता है कि एक बार जब उनके पुत्र हत्या के अपराध में बन्दी बना लिये गये, तब कवि ने स्वयं टीकमगढ़ जाकर महाराज महेन्द्रप्रताप सिंह को अपनी रचना सुनाई थी और बन्दी पुत्र को मुक्त करा लिया था। इस घटना से सिद्ध है कि कवि टीकमगढ़ नरेश महेन्द्रप्रताप सिंह (१८७४-१९०६ ई०) के समय विद्यमान था और आल्हा की रचना कर चुका था। साथ ही राजा उस रचना से बहुत अधिक प्रभावित हुये थे और तभी से उसका प्रचार-प्रसार हुआ होगा।

शिवू दा का वह 'साको' जगनिककृत आल्हखण्ड की कथा पर आधारित है। कवि ने उसे विविध वर्णनों के द्वारा सरस बनाने का प्रयत्न किया है, पर उसमें आल्हखण्ड जैसी प्रभविष्णुता और प्रभावक्षमता नहीं है। इतना अवश्य है कि बुन्देली की उक्तियों के सौन्दर्य बिम्बों की सटीक योजना और संगीत के माधुर्य ने उसे जनप्रिय बना दिया है। बुन्देली में यदि प्रसादता, कोमलता, सरसता और ओजस्विता को एक साथ देखन हो, तो वह शिवू दा के आल्हा में मिलेगी। यहां एक छोटा सा अंश उद्धत है—

तरफ हेर कें माहिल के मलना बोली बचन उचार।
धरी भुजरियां महिलन में ताको करिये कौन बिचार॥
आल उदलसी घर नइयां उर गढ़, कनवज गये रिसाय।
अनरस [1] हो गई चन्देले सें मलखे गओ कनारो [2] खाय॥
धार पिथोरा की थामे को आड़ी करै कौन तरबार [3]।
ब्रहम चन्देलो लरिका है कोउ नइयां पिठ रखबार [4]।
बारा मढ़ियां हम पूजत फिरैं उर तीरथ करें प्राग।
एक पन-देवा [5] महाराज के बरमा तनक दिया लो आग॥

अँगुवन भीजे रंग गारी रानी ढोरे ढुबरियन [6] आस।
अल्ल उदल की सुद [7] आवै उर जब लैबै सांस पै सांस॥
सावन पर्बी [8] पूनै को राखी बांदे सब सिन्सार।
परो सांकरो [9] हम पर है सिर पै परी सामरी [10] बार।
आल ऊदल को पीछो तको जब कोप करो चोहान।
सूनो महोबो कर आन कै बर पै लूटन कहत चोहान॥
नगर महोबे खों घेरा दये दल परी सामरी बार।
ताल किरतुवा की बैंदिया पै पूरी चलन कहत तरबार॥
करी खातिरी माहिल नें सिर पै गंगाधार।
ताल किरतुवा की बैंदिया पै मैं आड़ी करों तरबार॥
आ गई खातिरी रानी खों महिलन बदल चली सुक [11] पाय।
माहिल भूपत संगै चले दुवारे लौ [12] दओ पहुँचाय॥
राजा की बेदी होय लसगर में बेदी बैरी सामरी बाट।
मनियां देव के मन्दिर में बेदी बैठो ब्रहम कुमार॥
बेद पुरानन की धुन हो रई जां तां हवन करे सिरदार।
कनवज पूजै दिल्ली सुर और बरमा की पुजै तरबार।
करिया पाठे [13] की बरिया [14] तरे जुगियन लग रये भगवां पाल।
पुजै भगोती [15] ऊदल की बेटी बैठो बनाफर आल॥
पढ़बो लिखबो जा सिंसार में बम्मन कायस्त बैस को काम।
ऐसो समझ कें हिरदै में सादू भजलो सीताराम॥
पहिले कर पाछे गुवां [16] चलता सिंगी रिखन को नाम।
अन्त के अच्छर विधि मुख छोड़के भाई जा कबिता को ठाम॥ [17]
सुनके सन्चो कोउ करियो ना और चातुर देके ध्यान।
कढ़ै कजलिया महुबे की सब मिल मंत्र करो परवान॥

१. रोष, रुखाई, विगाड़ २. दूर होना, अलग होना ३. बुंदेली मुहावरा, सामाना करना ४. बंदेलीं मुहावरा, रक्षा करना, रक्षक ५. पन+देवा=पुरखों को पानी देने वाला—पुत्र ६. डबरा ▷ ढ़बरा ▷ ढ़बरियन—कई छिछले गडढ़े, जिनमें छिछला या उथला और गन्दा पानी हो, जो प्यासे की प्यास न बुझा सके। लाक्षणिकता से छूंछी आशा। ७ सुधि :> सुदि=याद। ८. पर्व ९. मुसीबत १० पृथ्वीराज चोहान ११. सुख ▷ सुक १२ तक १३. महोबा में एक पठार १४. बरगद का पेड़ १५. भगवती १६. गमाना, खो देना (गँवामा) १७. कूट पंक्ति।

● प्रथीराज रायसो तिलक (१६१६ ई०)

जिगनी निवासी दिशाराम ब्रह्मभट्ट ने सं० १६७६ वि० में इस तिलक की रचना वीर या आल्हछन्द में की थी। ग्रन्थ का नामकरण भ्रामक है, क्योंकि इसमें आल्हखंड के आधार पर ही कथा की योजना की गयी है। चन्द्रमुखी की समय में (पृ० २४) कवि ने आल्हा-ऊदल का वंशवृक्ष सा दिया है—अग्निदेव→बिनामन (सं० ६२६, वह्निदेव से प्रकट होने के कारण बनाफर, शशिवन्शी क्षत्रिय, चन्देलनरेश चन्द्रब्रह्म के सेनापति)→शशीपाल →रूपाचन्द्र→प्रभाचंद्र→मकरंद→अक्रूर→अक्षयराज→मनिकंठ→शनकंठ →ताराचंद्र→दीपचंद्र→सोढर अक्रूर→वत्सराज एवं दसराज→दसराज के सुपुत्र आल्हा-ऊदल। कथा में मौलिकता उतनी नहीं, जितनी प्रचलित आल्हखंड की अनुकृति है। बुन्देली के लोकप्रचलित शब्दो का प्रयोग है, परन्तु भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता है। एक उदाहरण निम्नांकित है—

भये कपूत मेरी कुक्षा तें क्यों ना बांझ करी करतार।
कामें नहि आये स्वामी के क्षत्री धर्म दियो बिसराय॥
अतिहीं कोप कियो पुत्रन पर नेंनन रही लालरी छाय।
करुना कर देवल दे रानी नेंनन ही नीर टरकाय॥
चोली भीज गई आंसुन सें रानी कहै बचन बिलखाय।
पुत्र नहीं ये सत्रु हमारे कुल में दीनों दाग लगाय॥
रज खो दीनी रजपूतन की खोयो सात साख लौ नाम।
जान सांकरे में स्वामी कों सेवक रहे बिदेसै छाय॥

● शिवशंकर दयाल रिछारिया 'अशान्त'

माँ की पा आशीष चौगुना जोश भर गया।
ब्रह्मा की रग-रग में फिर नव रोष भर गया॥
ब्रह्मा की शमशीर जहाँ भी जिस पर पड़ती।
गुब्बारे की भाँति उसी की गर्दन उड़ती॥
पहुँचा देता वीर वीर को मृत्युलोक से स्वर्गधाम को।
ब्रह्मा दोनों कर से लड़ता दाँतों से पकड़े लगाम को॥
आ जाती थी अनायास ही जाने शक्ति कहाँ से इतनी।
मातृभूमि के लिए हृदय में जाने भक्ति कहाँ से इतनी॥
जैसे ब्रह्मा की बाहों में प्रलयंकर का क्रोध भरा था।
अरि सेना का सिन्धु सोखने कुंभज-सा प्रतिशोध भरा था॥

● डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

वातायन में मनुहार लिये श्रावणी पर्व हँस उड़ आया
बालाओं ने कल कंठों से पुलकित सुखमय मल्हार गाया।
मंजुल मन मुग्धा महक उठीं संध्या की चिड़ियाँ चहक उठीं
निर्मल जल की डोली में चढ़ कजली की लाड़ियाँ लहक उठीं।
कीरत सागर की लहरों में कजली के दोने फैल गये
कुछ पास पास कुछ दूर दूर इठलाते जल में हेल गये।
संध्या की परियाँ उतर गईं नीले जल की गहराई में
कजली के दोने उठा लिये लोनी मद भरी कलाई में।
फिर तैर गईं कुछ दूर देश कुछ पैर गईं मझधार तलक
कुछ घेर गईं तट से उतरी लहरों के संग में पुलक पुलक।
कुछ हँस हँस खेलीं घाटों से मुस्काती तिरती चली गईं
कुछ बेचारीं उन्माद भरीं अरि के हाथों से छली गईं।
कीरत सागर की पारों में पृथ्वी पति के सैनिक आये
अबलाओं के ऊपर सहसा दुख के काले बादल छाये।

पवनी के प्रांजल पुष्प रखे के रखे रह गये बाटों में
संभ्रम चकित सी एकाएक भगदौड़ मच गई घाटों में।
ब्रह्मा से कोई कहे दौड़ सागर के तट पर व्यूह बना
अबलाओं के ऊपर नाचा दिल्लीपति का प्रत्यूह घना।
धीरज की सीमा टूट गई ईश्वर का नाम उचार उठीं
कुछ बार बार ऊदल-ऊदल अंचल पट रोप पुकार उठीं।
इस समय बचालो आन हमारी जन जन के नेता ऊदल
इस समय बचालो शान हमारी अरि दल के जेता ऊदल।
इस समय बचालो पवनी को पाटन पुर का उद्धार करो
इस समय बचालो बहनों को कुछ तो हम पर उपकार करो।
यदि अबलाओं का मान लुटा इस धरती का वरदान लुटा
बहिना चन्द्रा को राखी का भैया ऐसे अभिमान लुटा।
तो तू पाटन का पुत्र नहीं तुझमें न शेष अब पानी है
बावन गढ़ जिससे थर्राया वह असि हो गई पुरानी है।
जन्मा जो तुमको देवल ने मल्हना ने दूध पिलाया था
ब्रह्मा को रोता छोड़ तुम्हें सम्पुट में ले बहलाया था।
मत भूलो ऊदल आज उन्हें मत भूलो उनका लाड़ प्यार
परिमल के भोले भाव और माँ मल्हना का शत शत दुलार।
अबलाओं का उर फूट पड़ा जग का सब नाता छूट पड़ा
बस एक मात्र ईश्वर के ही अवलम्बन को मन टूट पड़ा।
ताहर चौंड़ा माहिल धांधू सब खड़े हुए थे पारों में
भावों के कितने मधुर मधुर स्वर तैर रहे थे तारों में।
बस अभी मिला बस अभी मिला पाटन पुर का जय सेतु मिला,
सागर की उर्मिल धारों में कितना कितना सुन्दर जय केतु मिला।
माहिल मन ही मन मुस्काया लो चलो आज चंदेल ताज,
चौंड़ा आगे बढ़कर बोला उठ चला आज चंदेल राज।
ताहर ने तट में आगे बढ़ भाले को कर में लिया थाम,
क्षण विजय हर्ष में पुलक गर्व से जीवन निधि को कर प्रणाम।
जैसे ही भाला झुका और दोने पर सम्भ्रम वार हुआ,
सहसा आँखें तिलमिला उठीं क्षण में प्रयत्न सब क्षार हुआ।
तड़ तड़ तड़िता की कौंध लिए भीषणतम उल्कापात हुआ,
अगणित सूर्यों का भास लिए असमय ही वज्राघात हुआ।
फूटा अथवा ब्रह्माण्ड गोल हरहरा उठे दिग तुंग श्रृंग,

भीषण चपला सी तड़क क्रोध जल प्लावन करने चली गंग।
या कोई ज्वाला मुखी उठा लावा की धार चमकती है,
या आसमान ही टूट गिरा दावा सी ज्योति दमकती है।
हर ओर त्राहि हाँ त्राहि मची तूफान उठा तूफान उठा,
कीरत सागर की लहरों में कैसा यह घोर उफान उठा।
दल में बिजली सी टूट पड़ी धीरज की सरिता फूट पड़ी,
अगणित भावों की भाग्यवती ताहर की तेगा छूट पड़ी।
चौंड़ा की चौड़ी छाती पर ऐसा भीषण घूसा पैठा,
हट गया कदम दो गज पीछे घुटने को टेक रहा बैठा।
माहिल की हिलकी बँधी और धांधू के पद थर थरा उठे,
केहरि किशोर के गर्जन से रण के दिग्गज हरहरा उठे।
जोगी जो आकर धमक उठा भाला जो कर का चमक उठा,
कीरत सागर की पारों में चन्देली ध्वज फिर गमक उठा।
असि का ऐसा कुछ वार हुआ ताहर के ऊपर भार हुआ,
संश्रित क्लेश से मुक्त पुनः पवनी का नव श्रृंगार हुआ।
ताहर के भाले से छूटा माहिल के जाले से छूटा,
कजली का शुभ पावन दोना शत्रु के पाले से छूटा।
तिर गया ताल में और दूर ताहर देखा घूर घूर,
चौंड़ा धांध सब खड़े रहे अरमान हो गये चूर चूर।

भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

सागर मदन तीर, देव मनिया की मढ़ी,
गढ़ महुवे के मानों देव रक्षपाल हैं।
कीरत की कुलकीर्ति कामना करत रहे,
संकट परे पै जिन काटे भव जाल हैं।
सिवा के सपूत मानो पुजे हे गनेश जैसे,
मानत मनौती रानी पूजत भुवाल हैं।
'इन्दु' फेर लई पीठ फेरो न दया की दीठ,
देव द्वार दीन दुखी डारत सवाल हैं।

वैभव बिलोक पृथ्वीराज ने चढ़ाई करी,
माहिल चुगल मामा जोर दये आंकरे।
माता मल्हना के महाराज परमाल जू के,
समय परे पै जिन काट दये सांकरे।
सुभट सपूतन को भूमि है बुन्देलखण्ड,
आल्हा बंध ऊदल भये हैं रणबांकुरे।
तम में तड़ित तेज तीखी तरवार धार,
'इन्दु' इतिहास को सिरोही गई टांकरे।

कुंजीलाल पटेल 'मनोहर'

आल्हा ऊदल जब ललकारें, दुश्मन खाय पछारें।
बड़े लड़इया महुबेबारे रन में लरे अंगारें।
रन-खेतन में दुश्मन-दल को कटिया सी कर डारें।
हाँथी चीखें इन बीरन की देख भयंकर मारें,
चलो 'मनोहर' चपला चमकन नित इनकीं तलवारें।

छत्री बिन्ध्यभूमि को प्यारो नगर महोवा बारो।
जात बनाफर में भओ पैदा ऊदल मूछ मुछारो।
सुनकें नांव दूर सें दुश्मन कढ़ गये काट किनारो।
नांव महुबियन के सुन-सुन के खाके गिरे तमारो।
आज 'मनोहर' आंखन झूलत ऊ ऊदल मतवारो।

●

निवेदन

●

- पत्रिका में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनाएँ फुलस्केप साइज के कागज पर एक तरफ सुलिखित या टंकित हों। अस्वीकृत रचनाएँ लौटाने की व्यवस्था नहीं है। स्तरीय और उपयोगी रचनाओं की स्वीकृति-सूचना यथा समय स्वतः भेज दी जायेगी।
- 'पोथियों का पन्ना, स्तम्भ के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ अपना आवश्यक है।
- विशिष्ट स्तम्भों के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं, उन्हें भेजते समय सिरे पर स्तम्भ का नाम अंकित अवश्य करें।
- पत्रिका का प्रत्येक अंक यथासमय डाक द्वारा प्रेषित किया जाता है। न मिलने पर स्थानीय डाकघर से सम्पर्क करें।
- 'इस अङ्क से आपका वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है, कृपया पत्रिका का वार्षिक शुल्क रु० २२·०० मनीआर्डर या स्टेट बैंक के बैंक ड्राफ्ट से एक माह के भीतर भेजने का कष्ट करें या फिर सूचित करें कि अगला अंक वी० पी० पी० से भेज दिया जाये। आपका उत्तर न आने पर अंक का भेजना सम्भव न हो सकेगा। सहयोग के लिए धन्यवाद।'

मुद्रक—इलाहाबाद प्रेस, इलाहाबाद।

अकादमी के अभिनव प्रकशान

बुन्देली फागों के उद्भव, विकास, भाव, भाषा, संस्कृति एवं ईसुरी, गंगाधर व्यास, ख्याली तथा अज्ञात फागकारों पर प्रामाणिक सामग्री के लिए एकमात्र ग्रंथ

बुन्देली फाग काव्य : एक मूल्यकन

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त,
डा० वीरेन्द्र निर्झर

मूल्य : मात्र बीस रुपये

'आल्हा' पूरे देश की ऊर्जा का महाकाव्य बन गया है, पर उसकी कथा, वस्तु, भाव, भाषा, संस्कृति, गायकी पर कोई ग्रन्थ नहीं है। प्रामाणिक शोधपरक सामग्री के साथ उसकी विविध वर्णनाएँ उपजीवी काव्य-सम्पदा। हिन्दी के प्रथम कवि जगनिक और आल्हखण्ड पर प्रथम ग्रन्थ

आल्हखंड : शोध और समीक्षा

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त,
डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

मूल्य : मात्र चालीस रुपये

बुन्देलखण्ड और बुंदेली का एकमात्र प्रकाशन संस्थान

बुन्देलखंड साहित्य अकादमी

छतरपुर—४७१००१, (म० प्र०)

पंजीयन १०६२५/८२